गायत्री का ब्रह्मवर्चस्

• श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री उपासना से ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति

आत्मा में सन्निहित ब्रह्मवर्चस का जागरण करने के लिए गायत्री उपासना आवश्यक है । यों सभी के भीतर सत्–तत्व बीज रूप में विद्यमान है पर उसका जागरण जिन तपश्चर्याओं द्वारा सम्भव होता है, उनमें गायत्री उपासना ही प्रधान है । हर आस्तिक को अपने में ब्रह्म तेज उत्पन्न करना चाहिए । जिसमें जितना ब्रह्म–तत्व अवतरित होगा, वह उतने ही अंशों में ब्राह्मणत्व का अधिकारी होता जायेगा । जिसने आदर्शमय जीवन का व्रत लिया है, व्रतबंध, यज्ञोपवीत धारण किया है, वे सभी व्रतधारी अपनी आत्मा में प्रकाश उत्पन्न करने के लिए गायत्री उपासना निरन्तर करते रहें, यही उचित है । जो इस कर्त्तव्य से च्युत होकर इधर–उधर भटकते हैं, जड़ को सींचना छोड़कर पत्ते धोते फिरते हैं , उन्हें अभीष्ट लक्ष्य प्राप्त करने में बिलम्ब ही नहीं, असफलता का भी सामना करना पड़ता है ।

साधना शास्त्रों में निष्ठावान भारतीय धर्मानुयायियों को, द्विजों को एक मात्र गायत्री उपासना का ही निर्देश किया गया है । उसमें वे अपना ब्रह्मवर्चस आशाजनक मात्रा में बढ़ा सकते हैं और उस आधार पर विपन्नता एवं आपत्तियों से बचाते हुए सुख शान्ति के मार्ग पर सुनिश्चित गति से बढ़ते रह सकते हैं । द्विजत्व का व्रत–बंध स्वीकार करते समय हर व्यक्ति को गायत्री मन्त्र की दीक्षा लेनी पड़ती है, इसलिए उसे ही गुरुमन्त्र कहा जाता रहा है । पीछे से अन्धकार युग में चले सम्प्रदायवाद ने अनेक देवी–देवता, मंत्र और उनेक उपासना विधान गढ डाले और लोगों को निर्दिष्ट मार्ग से भटकाकर भ्रम–जंजालों में उलझा दिया । फलतः अनादि काल से प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी की निर्दिष्ट उपासना पद्धति हाथ से छूट गई और आधार रहित पतंग की तरह हम इधर उधर टकराते हुए अधःपतित स्थिति में जा पहुँचे ।

शास्त्र कथन है––

ब्रह्मत्वं चेदाप्तुकामोऽस्युयास्व गायत्रीं चेल्लोककामेऽन्यदेवम् कामो ज्ञातः क्वीय पाद प्रवृत्या वादः को वा तृप्ति हीने प्रवृत्तिः ।

बुद्धः साक्षी बुद्धिगम्यो जयादौ गायत्र्यर्थः साऽनघो वेद सामः तद ब्रह्मैव ब्रह्मतोपासकस्याप्येवं मन्त्रः कोऽस्ति तत्रे पुराणै ।।१३।।

जात्यश्वः किं जातिमाप्तुं सकामो गत्यभ्यासात्स्यष्टता मेति जातिः । ब्रह्मत्वाप्तौ कः प्रयासो द्विजा नां यद गायत्र्या व्यज्यते चाष्टमेऽब्दे ।।१४।।

ब्रह्मत्वस्य स्यापनार्थं प्रविष्टा गायत्रीयं तावतास्य द्विजत्वम् । कर्ण द्वारा ब्रह्म जन्म प्रदानायुक्तो वेदे ब्राह्मणो ब्रह्मनिष्ठः ।।१६।।

अर्थ—यदि किसी को ब्रह्मत्व की प्राप्ति करने की इच्छा है तो उसको वेदमाता गायत्री की ही उपासना करनी चाहिए । यदि किसी लोक विशेष को प्राप्त करने की इच्छा हो तो अन्य देवों की उपासना करो । अपने चरणों में प्रवृत्ति करने से ही हार्दिक कामना का ज्ञान हो जाता है । जो तृप्ति हीन होता है, उसी की प्रवृत्ति होती है । इसमें कोई भी वाद नहीं है ।

यह बुद्धि की साक्षी है । गायत्री का जो अर्थ है वह अघ रहित, अर्थ पूर्ण पवित्र और वेदों का साररूप है, इसके जप आदि के करने में ही यह बुद्धि में गम्यमान होता है । ब्रह्मत्व प्राप्ति की जो उपासना करने वाला है, उसके लिए यह साक्षात् ब्रह्म ही है । गायत्री के समान मन्त्र और पुराण में अन्य कोई भी मन्त्र नहीं है । गायत्री मंत्र ही सर्व शिरोमणि मंत्र है ।१३।

जाति से जो अश्व है वह क्या कभी अपनी जाति की प्रप्ति करने की इच्छा वाला होता है ? उसकी जाति की स्पष्टता तो उसकी गति के अभ्यास से ही तुरन्त हो जाया करती है । इसी तरह ब्रह्मत्व की प्राप्ति के लिए द्विजों का क्या प्रयास होता है, अर्थात् कुछ भी नहीं क्योंकि वह तो आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार होने पर गायत्री माता के द्वारा स्वयं ही व्यज्यमान हो जाया करता है । ।।१४।।

ब्रह्मत्व के स्थापन करने के लिए ही यह गायत्री प्रविष्ट होती है और तभी से द्विजत्व की इसके द्वारा प्राप्ति हुआ करती है । कानों के छिद्रों के द्वारा ब्रह्म जन्म का ज्ञान प्रदान किया जाता है अर्थात् गायत्री का उपदेश कानों में ही किया जाया करता है । जब दीक्षा—सम्पन्न होती है, तभी वह ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण होता है, ऐसा ही वेदों में कहा गया है । ।।१६।।

तात्पर्य यह है कि जन्मजात ब्राह्मण कोई भी नहीं हो सकता है । यह तो मिथ्याभिमान ही होता है, क्योंकि ब्राह्मण का भले ही कोई पुत्र हो किन्तु वह ब्राह्मण एवं द्विज तब तक नहीं हो सकता है, जब तक उसे आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार होने पर गायत्री की दीक्षा नहीं होती है । गायत्री मन्त्र ही ब्रह्मत्व प्रदान करने वाला होता है ।

ब्रह्मवर्चस् गायत्री उपासना से ही उपलब्ध होता है । इस उपासना से देव तत्वों की मानव शरीर में निरन्तर वृद्धि होती रहती है और शक्तिशाली व्यक्ति देवत्व की महिमा, महत्ताओं को उसी जीवन में उपलब्ध कर लेता है । उसमें देवी विशेषताएँ प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगती हैं ।

सर्व देवमयो विप्रो ब्रह्म–विष्णु शिवात्मकः ।।
ब्रह्म तेजः समुद्भूतः सदाः प्राकृतिको द्विजः ।।
ब्राह्मणे भुंज्यते यत्र तत्र भुङ्क्ते हरिः स्वयम् ।
तत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च खेचरा ऋषयो मुनिः ।।
पितरो देवताः सर्वे भुज्जन्ते नात्र संशयः ।
सर्व देव मयो विप्रस्तम्मात्तं नाव मानय ।।
ब्रह्मणं च जननी वेद स्याग्निं श्रुतिं च गाम् ।
नित्य मिच्छन्ति ते देवा यजितुं कर्म भूमिषु ।।

अर्थ–ब्राह्मण सर्व देवमय और ब्रह्मा–विष्णु एवं शिव स्वरूप हैं । द्विजगण यद्यपि प्राकृतिक अर्थात् पंचभूतमय ही होते हैं, तो भी गायत्री के ब्रह्म तेज से उनकी उत्पत्ति होती है । जिस स्थान पर गायत्री के उपासक ब्राह्मण भोजन किया करते हैं, वहाँ साक्षात् स्वयं श्री हरि ही भोजन किया करते हैं, और वहाँ पर ब्रह्मा–विष्णु–रुद्र–खेचर–ऋषि–मुनि, पितर और देवता सभी भोजन करके संतृप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं है, ब्राह्मण जो सावित्री के परमोपासक हैं, वे सर्व देवमय होते हैं, इसलिए उनका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए । देवगण सदा यही कामना किया करते हैं कि इस कर्मभूमि में ब्राह्मण वेदमाता गायत्री–अग्नि–श्रुति और गौ इन सबकी नित्य पूजा होती रहनी चाहिए ।

गायत्री उपासना की महान् महत्ता का यह प्रतिपादन भारतीय दर्शन

और योग शास्त्रों में पग–पग पर मिलता है । इतने पर भी यह देखा गया है कि कई बार विधि–विधान का पालन करते हुए भी लोग गायत्री उपासना के वह लाभ प्राप्त नहीं कर पाते जिनका इस तरह उल्लेख मिलता है । उसका कारण होता है वातावरण का प्रभाव । यह सच है कि अनेक प्राणवान व्यक्ति अपनी तप साधना और संकल्प शक्ति से वातावरण को भी बदल डालते हैं । किन्तु सच यह भी है कि मनुष्य के विकास में वातावरण का प्रभाव बहुत अधिक मात्रा में होता है । उपासना चूँकि व्यक्ति के संस्कारों से सम्बन्ध रखती है और प्रत्येक वातावरण अच्छे–बुरे संस्कार समाहित रखता है अतएव गायत्री उपासना में तो स्थान और वातावरण का महत्व निश्चित ही बहुत अधिक होना चाहिए ।

इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि जब कौरव पाण्डव युद्ध के लिए स्थान चयन की बात आई तो श्रीकृष्ण ने एक विशेष दूत नियुक्त किया उसने सर्वत्र युद्धस्थल की छानबीन की । कुरुक्षेत्र में उसने परस्पर दो सगे भाइयों को युद्ध करते देखा यह घटना उसने श्रीकृष्ण को बताई । फलतः यही क्षेत्र युद्ध के लिए चुना गया, क्योंकि उन्हें सन्देह था भावनाशील होने के कारण कहीं अर्जुन युद्ध का परित्याग न कर बैठे । श्रवण कुमार के बारे में भी ऐसी ही कथा प्रख्यात है । वह जब अपने माता पिता को काँवर में लिए तीर्थाटन करा रहे थे तो एक स्थान ऐसा आया जहाँ उसने न केवल काँवर पटक दी अपितु अपने माता–पिता को कटु शब्द भी कहे । उस प्रदेश से आगे निकल जाने के बाद उसे अपने कथन पर पश्चाताप हुआ इस पर उसके पिता ने सान्त्वना देते हुए समझाया कि इसमें श्रवण का कोठ दोष नहीं यह स्थान मय दानव का था जिसने कभी अपने पिता माता को यहीं बन्दी बना कर मृत्यु के घाट उतार दिया था । कुन्ती के बारे में भी एक ऐसी ही घटना का उल्लेख पुराणों में मिलता है । भूमि के संस्कार एक तथ्य हैं इसे कोई भी पवित्र जलाशयों, देव मन्दिरों तथा श्मशान घाट में जाकर स्वयं अनुभव कर सकता है ।

कुल्लू की मिट्टी सेवों के लिए प्रसिद्ध है अच्छी से अच्छी खाद, जल और मौसम पाकर भी वैसे सेव आजतक अन्यत्र कहीं नहीं उगाये जा सके ।

नागपुर के सन्तरे और भुसावल के से केले अन्यत्र नहीं मिलते । मुजफ्फरपुर, देहरादून लीचियों के लिए प्रसिद्ध है तो लखनऊ खरबूजों के लिए, मलीहाबाद और बनारस जैसे स्वादिष्ट आम दूसरी जगह कम मिलते हैं । दुधारू गायें सारे देश में मिलती हैं । किन्तु हरियाणा की गायों का कोई मुकाबला नहीं । कोहकाफ जैसा सौन्दर्य सारी दुनिया में उपलब्ध नहीं तो रूस का ही अजरबेजान क्षेत्र शत जीवन के लिए विश्व विख्यात है । जहाँ सौ वर्ष से पूर्व मृत्यु को वैसा ही आकस्मिक माना जात हैं जैसे किसी की दुर्घटना में मृत्यु हो जाये । यह सब वातावरण के प्रभाव और संस्कार हैं । उनसे प्रभावित हुए मनुष्य कभी रह नहीं सकता, आज की परिस्थितियाँ तो वैसे भी सर्वत्र संस्कार विहीन हो गई हैं सो प्रयत्न करते हुए भी कई बार गायत्री उपासनाओं का अभीष्ट फल नहीं मिल पाता । हरिद्वार में ब्रह्मवर्चस की स्थापना का उद्देश्य गायत्री की उच्चस्तरीय साधना के इच्छुकों के लिए वह सुयोग ही प्राप्त कराना है ।

साधना की सफलता में स्थान, क्षेत्र व वातावरण का असाधारण महत्व है । विशिष्ट साधनाओं के लिए घर छोड़कर अन्यत्र उपयुक्त स्थान में जाने की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि पुराने निवास स्थान का ढर्रा अभ्यस्त रहने से वैसी मनः स्थिति बन नहीं पाती जैसी महत्व पूर्ण साधनाओं के लिए विशेष रूप से आवश्यक है । कुटुम्बियों के, परिचित लोगों के साथ जुड़े हुए भले-बुरे सम्बन्धों की पकड़ बनी रहती है । कामों का दबाव बना रहता है । राग द्वेष उभरते रहते हैं । दिनचर्या बदलने पर कुटुम्बी तथा साथी विचित्रता अनुभव करते और उसमें विरोध खड़ा करते हैं । आहार और दिनचर्या बदलने में विग्रह उत्पन्न होता है । घरों के निवासी साथी जिस प्रकृति के होते हैं वैसा ही वातावरण वहाँ छाया रहता है । यह सब अड़चनें हैं जो महत्वपूर्ण साधनाओं की न तो व्यवस्था बनने देती हैं और न मनःस्थिति ही वैसी रह पाती है । दैनिक नित्य कर्म के रूप में सामान्य उपासना तो घर पर चलती रह सकती है, पर यदि कुछ विशेष करना हो तो उसके लिए विशेष स्थान वातावरण, सानिध्य एवं मार्ग दर्शन भी चाहिए । यह सब प्राप्त करने के लिए उसके लिए उपयुक्त स्थान का प्रबंध करना वह

आधार है, जिस पर सफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है ।

यों यह कार्य घर से कुछ दूर एकान्त वाटिका, नदी तट जैसे स्थानों में भी हो सकता है । पर सुविधा हो तो हिमालय एवं गंगातट की बात सोचनी चाहिए । बाह्य शीतलता के साथ आन्तरिक शान्ति का भी तारतम्य जुड़ा रहता है । हिमालय की भूमि ही ऊँची नहीं है उसकी भूमि संस्कारिता भी ऊँची है । अभी भी इस क्षेत्र के निवासी ईमानदारी और सज्जनता की दृष्टि से प्रसिद्ध हैं । घोर गरीबी और अशिक्षा के रहते हुए भी उनकी प्रामाणिकता का स्तर बना हुआ है । हिमालय यात्रियों में से कभी कदाचित ही किसी पहाड़ी कुली से बेईमानी, बदमाशी की शिकायत हुई हो ।

प्राचीन काल में हिमालय क्षेत्र ही स्वर्ग कहलाता था । इसके अनेकों ऐतिहासिक प्रमाण अखण्ड ज्योति में लगातार एक लेख माला के रूप में छप चुके हैं । देव मानवों की यही भूमि थी । थोयोसोफी वालों की मान्यता है कि अभी भी दिव्य आत्माएँ वहीं निवास करती हैं । चमत्कारों और सिद्धियों की खोज करने वाले प्रत्येक शोधकर्त्ता को हिमालय की कन्दराएँ छाननी पड़ी हैं । हनुमान, अश्वत्थामा आदि चिरजीवी उसी क्षेत्र में निवास करते हैं । इतिहास साक्षी है कि प्रायः सभी ऋषियों की तपश्चर्याएँ इसी क्षेत्र में सम्पन्न हुई हैं । सात ऋषियों की तपोभूमि हरिद्वार के उस स्थान पर थी जहाँ आजकल सप्त सरोवर है उनके आश्रमों को बचाने के लिए गंगा ने अपनी धारा को सात भागों में बाँटा, यह कथा कई पुराणों में आती है । पाण्डव, धृतराष्ट्र इसी क्षेत्र में तप करते हुए स्वर्ग सिधारे थे । अयोध्या छोड़कर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न इसी भूमि में तप करते हुए दिवंगत हुए थे । गुरु वशिष्ठ की गुफा यहीं थी । व्यास जी और गणेश जी ने मिलकर १८ पुराण इसी क्षेत्र वसोधारा नामक स्थान में लिखे थे । भागीरथ, परशुराम, विश्वामित्र, दधीचि जैसे परम प्रतापी तपस्वियों की साधना हिमालय में ही सम्पन्न हुई थी ।

ब्रह्मवर्चस् तपश्चर्या गायत्री की उच्चस्तरीय साधना है । इसके लिए उपयुक्त स्थान एवं वातावरण की आवश्यकता थी, इसका ध्यान प्रारम्भ से ही रखा गया है । यह आश्रम गंगा की धारा से २०० गज से भी कम दूरी पर

है । सात ऋषियों की तपोभूमि के रूप में यह पौराणिक साक्षी के साथ प्रख्यात है । गंगा के मध्य सात द्वीप हैं जिन्हें छोटे-छोटे उपवन कहा जाता है । उनमें ऐसे सघन वृक्ष उगे हुए हैं । प्रयत्न यह रहेगा कि साधक ब्रह्मवर्चस आश्रम में निवास तो करें पर साधना के लिए निर्जन द्वीपों में चले जाया करें जिनमें कभी सप्त ऋषि तप करते थे और वे स्थान अभी भी जन प्रवेश से वंचित रहने के कारण अपनी मौलिकता विशेषता अभी भी बनाये हुए हैं । गंगातट के शहरों का पानी गंगा में ही बहाया जाता है । पर ब्रह्मवर्चस तक वैसा कहीं नहीं हुआ है । इससे पूर्व ऋषिकेश, देव प्रयाग, उत्तरकाशी आदि जो कस्बे हैं उनका गंदा पानी भी गंगा में नहीं गिरा है । इस विशेषता के कारण यहाँ की जल धारा अभी भी अपनी मौलिक विशेषता पूर्ववत् बनाये हुए है ।

गंगा तट पर साधना का ही अपना महत्व है फि चारों ओर गंगा घिरी होने से बीचों बीच जन शून्य द्वीपों में बैठ कर साधना करने का तो प्रतिफल और भी विलक्षण होगा । नित्य गंगा स्नान, मात्र गंगा जल पान, टहलना, बैठना गंगा माता की ही गोद में इन विशेषताओं के कारण ब्रह्मवर्चस् साधना के लिए उपयुक्त वातावरण की ही व्यवस्था हुई है । इसे दैवी अनुग्रह एवं सहयोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता । आश्रम निर्माण के लिए परम सात्विक धन भी भाव भरी श्रद्धा लिए अपने को सार्थक बनाने के लिए मचलता चला आ रहा है भले ही उसकी मात्रा कितनी ही स्वल्प क्यों न हो । साधना की दृष्टि से गंगा सान्निध्य का महत्व शास्त्रकारों ने बताया है-

यत्र गंगा महाभागा स देशस्तत्तपोवनम् ।
सिद्धक्षेत्रन्तु तज्ज्ञेय गेगातीरं समाश्रितम् ।।

-कूर्म पुराण

जहाँ पर यह महाभागा गंगा है, वह देश उसका तपोवन होता है । उसको सिद्ध क्षेत्र जानना चाहिए ।

स्नातानां तत्र पयसि गागे ये नियतात्मनाम् ।
तुष्टिर्भवति या पुसां न सा क्रतुशतैरपि ।। -पद्मपुराण

गंगा के जल में स्नान किये हुए नियत आत्मा वाले पुरुषों को जो तुष्टि होती है वह सौ बसन्त ऋतुओं से भी नहीं होती है ।

मुनयः सिद्धगन्धर्वा ये चान्ये सुरसत्तमाः ।
गंगातीरे तपस्तप्त्वा स्वर्गलोकेऽयुताभवन् ।।११।।
परिजातसमाः पुष्पवृक्षाः कल्पद्रुमोपमाः ।
गंगातीरे तपस्तप्त्वा तत्रैश्वर्य लभन्ति हि ।।१२।।
तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्प्र तैर्नानाविधैस्तथा ।
पुरुदानैर्गतिर्या च गंगा संसेवतां च सा ।।१२।।

—पद्म पुराण

मुनिगण, सिद्ध लोग, गन्धर्व वृन्द और जो अन्य देवों में परम श्रेष्ठ हैं वे गंगा के तट पर तपस्या करके स्वर्ग लोक में स्थाई रूप से निवास प्राप्त कर अच्युत होते हुए ही वहाँ रहते हैं ।।११।।, गंगा के तट पर तपश्चर्या करके वहाँ पर परम ऐश्वर्य का लाभ लिया करते हैं क्योंकि वहाँ पर जो पुष्पों वाले वृक्ष हैं वे पारिजात (देव तरु) के समान हैं और समस्त मनोकामना पूर्ण कर देने वाले कल्पवृक्षों के तुल्य होते हैं ।।१२।। बहुत प्रकार के तपों से यज्ञ और नाना प्रकार के व्रतों से तथा अधिक दानों से जो मनुष्य को गति प्राप्त होती है वही गति भागीरथी गंगा के जल में स्नानादि से प्राप्त होती है अतः इस गंगा का भली—भाँति सेवन करना चाहिए ।।१३।।

'गंगोत्री महात्म्य' में गंगा सान्निध्य का गुणगान इस प्रकार किया गया है ।

आर्त्तानामार्त्तिनाशायः मोक्ष सिद्धये तदर्थिनाम् ।
सर्वेषां सर्वसिद्धयै च गंगैव शरणं कलौ ।।

दुःखियों के दुःख नाश के लिए, मुमुक्षुओं के लिए, और सब को सब प्रकार की सिद्धि के लिए कलियुग में केवल गंगाजी की ही शरण है ।

रागादि चित्तदोषाश्च क्षीयन्ते तदनन्तरम् ।
दोषक्षये च भगवद् भक्तिर्ज्ञानं च जायते ।।

राग, द्वेष आदि चित्त के सब दोष भी उसके पश्चात् क्षीण हो जाते हैं एवं सब दोष भी नष्ट होने पर निर्मल हुए मन में ईश्वर भक्ति तथा ज्ञान भी उदित होते हैं ।

सूक्ष्म ज्ञान गंगा को गायत्री कहा जाता है और उसका मूर्तिमान स्वरूप तरण तारिणी गंगा है । दोनों एक ही तत्व के यह दो रूप हैं । शिवजी के मस्तिष्क से निसृत हुई यह ज्ञान गंगा ही भागीरथी बन कर प्रकट हुई है । गायत्री और गंगा की जन्म जयन्ती भी एक ही दिन है । जेष्ठ सुदी दशमी ही गंगा और गायत्री दोनों की जन्म तिथि है । दोनों एक रूप ही समझी जा सकती हैं ।

एतां विद्यां समाराध्य गंगा त्रैलोक्य पावनी ।
तेन साजान्हवी पुण्या शान्ति दा सर्वदेहिनाम् ।
गायत्र्या संयुक्ता तस्या प्रभावमतुल ध्रवम् ।।

यह ब्रह्म विद्या ही त्रैलोक्य पावनी गंगा बन कर प्रकट हुई । वह प्राणियों को पवित्रता एवं शान्ति प्रदान करती है । गायत्री युक्त होने पर उसका प्रभाव और भी अतुल हो जाता है ।

गंगाजल की विशेषता में ऐसे ही दिव्य कारणों का समावेश होने से उसे देव संज्ञा दी गई है । उसके स्नान से शरीर की गर्मी एवं मलीनता हटाना ही नहीं, अन्तश्करण में पवित्रता का संचार होना भी प्रधान हेतु है । इसी उद्देश्य से असंख्य भावनाशील नर–नारी उसमें स्नान करने के लिए दौड़े आते हैं और अपनी धर्म भावना तृप्त करते हैं । यह अन्धविश्वास भर नहीं है, जहाँ गंगा की पवित्रता अभी भी अक्षुण्ण है वहाँ उसके तट पर कुछ समय निवास करके यह प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है कि उससे आन्तरिक शान्ति का कितना लाभ मिलता है । शहरी कोलाहल–गटरों का गंदा पानी मिलते चलने से उनका प्रभाव घटते जाना स्वाभाविक है । किन्तु अभी भी हिमालय क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली धारा में प्राचीन काल जैसी पवित्रता का अनुभव किया जा सकता है ।

सप्त ऋषियों ने अपनी तपस्थली हिमालय की छाया और गंगा की गोद में बनाई थी । भगवान राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अयोध्या की सुविधाओं को छोड़कर गंगा तट की दिव्य विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही इस क्षेत्र में तप करने के लिए आ गये थे । तपस्वियों की परम्परा हिमालय क्षेत्र में पहुँचने और गंगातट पर निवास करने की रही है । यह सब अकारण ही नहीं होता

रहा है । तत्वदर्शी अध्यात्म विज्ञानियों ने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अनुकूलताओं, उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए ही इस का चयन किया था । गंगा यों एक नदी भर है, पर सूक्ष्म दृष्टि से उसे प्रवाहमान देव सत्ता ही कहा जा सकता है । उसके स्नान, दर्शन, जलपान आदि से सहज ही पवित्रता का संचार होता है । माता की गोदी में रहने के समान ही उसके सान्निध्य का भाव भरा आनन्द अभी भी भावनाशील लोग सहज ही उपलब्ध करते हैं ।

गायत्री की विशिष्ट साधनाओं की दृष्टि से तो हिमालय क्षेत्र और गंगा तट साक्षात् गायत्री सानिध्य की तरह हैं ही, प्राचीन काल में ऐसे अनेक शक्तिपीठों की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई । तीर्थ परम्परा के पीछे ऋषियों का यही मन्तव्य रहा है कि वहाँ रहकर साधकगण वातावरण के संस्कारों का विशेष लाभ प्राप्त करें जिससे उनकी साधना का द्रुत विकास संभव हो सके । प्राचीन काल में यह परम्परा श्रद्धाजन्य रही है, उसका कोई वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत नहीं किया गया । पीछे यह परम्परायें भी विश्रृंखलित हुई अतएव आज का शिक्षित समुदाय उसे अंध श्रद्धा की संज्ञा देता है, पर अब विज्ञान भी इस तथ्य को मानने लगा है कि चेतना के क्षेत्र में वातावरण और स्थान विशेष का प्रभाव असंदिग्ध रूप से होता है ।

जीन डिक्सन की तरह पिछले दिनों योरोप और अमेरिका में ऐसे कई स्त्री–पुरुष प्रकाश में आये जो मात्र किसी की वस्तु का स्पर्श करके उसके बारे में न केवल वर्तमान अपितु भूत और भविष्य की घटनायें तक जान लेते और बता देते थे । जर्मनी में १२ वर्ष पूर्व इस सम्बन्ध में कुछ वैज्ञानिकों ने विशेष रुचि ली और यह पाया कि ऐसी घटनायें असत्य नहीं होतीं ।

डा. राइन के अनुसार–'साइकोमेट्री सिद्धान्त' से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि प्रत्येक वस्तु में मनुष्य शरीर में रहने वाले प्राण और मन की तरह का एक सूक्ष्म प्रभाव (ईथरिक– इम्प्रेशन) होता है, जो मन को प्रभावित करता है । स्पर्श से मनुष्य के मन के संस्कार उस वस्तु में चले जाते हैं । वह संस्कार पुनः उस व्यक्ति से सम्बन्ध जोड़ लेते हैं इसी आधार पर वह व्यक्ति जानकारी पा लेता है ।

मोन्सियन बोविन ने एक यन्त्र बनाया जो मनुष्य शरीर के रेडियेशन की माप करता है । उससे जो तथ्य सामने आते हैं, उनमें एक तो यह कि उँगलियों व हथेलियों पर यह सबसे अधिक होता है । शेष शरीर का सम्बन्ध यहीं से होता है, इसलिए केवल मात्र उँगलियों से ही शरीर की विभिन्न स्थानों वाली विद्युत या जीवन शक्ति का पता लगाया जा सकता है । अँगूठे का तो सीधे मस्तिष्क से सम्बन्ध होता है । यही नहीं उसमें जागृत ही नहीं सुषुप्ति अवस्था में भी मस्तिष्क की हलचलें प्रभाव डालती रहती हैं । भारतीय संस्कृति में चरण–स्पर्श की परम्परा ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है । उसमें महापुरुषों, बड़ों, बुजुर्गों, पवित्र नदियों और मूर्तियों को प्रणाम करके उनसे प्राण–पवित्रता, ज्ञान–संस्कार और शक्ति ग्रहण करने का यह रहस्य ही सन्निहित है । एकलव्य ने तो अपनी श्रद्धा मिट्टी के द्रोणाचार्य के चरणों में आरोपित कर दी थी । परिणाम यह हुआ कि द्रोणाचार्य को पता भी नहीं चल पाया और एक तरह से उनका सारा ज्ञान चोरी हो गया । "श्रद्धावान्लभते ज्ञानं" के पीछे यही मनोवैज्ञानिक नियम काम करता है, जिसे अब वैज्ञानिक मान्यता भी मिल गई है । इन सब में प्रत्येक वस्तु में मन या ईश्वरिक इम्प्रेशन होने, सारे संसार में एक समान ऊर्जा तत्व (कामन इनर्जेटिक रियेलिटी) होने का सिद्धान्त काम करता है । इन दोनों के संयोग से ही ज्ञान, देश काल व पदार्थ को प्रभावित करते और इन से परे की भी जानकारी देते हैं ।

प्रकृति विविधा है, पर उसमें एक ही मौलिक तथ्य काम करता है, उसी से ऊर्जा मिलती है । विकास के साधन मिलते हैं, अभिव्यक्ति मिलती है । यदि सभी के कारण की दिशा में लौटें तो एक ही केन्द्र बिन्दु मिलेगा । इसी तरह सारे विश्व में एक अति चेतन मन भरा है, उससे सम्पर्क सम्बन्ध बनाकर लोग प्राकृतिक रहस्यों को जान सकते हैं । कई बार प्राकृतिक रुप से क्षणिक बोध किसी को भी हो सकता है, यहाँ तक कि कुत्ते, बिल्लियों तथा मकड़ी तक को भी भविष्य और अतीन्द्रिय बोध होते पाया गया है । पर किसी सार्थक उपयोग और लोक कल्याण की दृष्टि से मिलने वाली शक्ति सामर्थ्य किन्ही प्रज्ञावान् व्यक्तियों को ही मिल सकती है ।

योगदर्शन के अध्याय ३ सूत्र ५३ में महर्षि पातञ्जलि ने बताया है—

जाति लक्षण देशैरन्यतान वच्छेदात्तुल्योस्तयः प्रतिपत्यिः

अर्थात्—जाति, लक्षण और देश भेद से जिन दो वस्तुओं का भेद नहीं ज्ञात होता एवं दोंनो वस्तु तुल्य मालूम होती हैं, उनके भेद का ज्ञान विवेक ज्ञान से ही होता है। विवेक ज्ञान को स्पष्ट करते हुए आगे यह बताया है कि लोक को तो जाति, लक्षण व देश द्वारा पदार्थों का भेद ज्ञान होता है किन्तु योगियों को बिना जाति लक्षण व देश के विवेक ज्ञान के ही भेद का निश्चय होता है।

जमशेद जी टाटा के आग्रह पर स्वामी विवेकानन्द ने इसी दृष्टि से टाटानगर का स्थान उसके प्लान्ट के लिए उपयोगी बताया था जो आज भी चल रहा है। राजस्थान में एक पानी वाले महात्मा थे। स्वयं तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने दिल्ली के लिए जल सप्लाई हेतु उनकी सेवायें ली थीं। वे कहीं भी चलकर उस स्थान पर जल की उपलब्धि और मात्रा की जानकारी दे देते थे। यह सारी बातें इसी सिद्धान्त का समर्थन करती हैं कि मन की तरह की एक सूक्ष्म सत्ता प्रकृति में सर्वत्र कार्य करती है। इसमें ज्ञान और शक्तियाँ दोनों सन्निहित हैं उनसे सम्बन्ध स्थापित कर कोई भी ज्ञान, शान्ति और शक्ति प्राप्त कर सकता है। इस तथ्य की पुष्टि श्रीमती एनीबेसेण्ट ने भी की है।

"न्यू वर्ल्ड ऑफ माइण्ड" के पृष्ठ ८४ पर डा. राइन नें, "इम्प्रिजन्डस्प्लेन्डर" के अध्याय ८ में डा. रेनर जानसन ने, "सुपर नार्मल फैकल्टीज इन मैन" में डा. आस्टी तथा डा. हेटिंगर ने अपनी पुस्तक "अल्ट्रा, परसेप्टिव फैक्ट्स" में "स्पर्श ज्ञान" का समर्थन करते हुए कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष इस प्रकार निकाले हैं—

१—वस्तु का स्पर्श करने वाले को उसके मन के सूक्ष्म संस्कार उस वस्तु में उतर आने के आधार पर पहचाना जा सकता है।

२—एक बार तादात्म्य स्थापित हो जाने पर वस्तु का रहना आवश्यक नहीं।

३—यदि वस्तु से व्यक्तिगत का सम्पर्क वर्षों पहले हुआ है और अब वह व्यक्ति नहीं भी हो तो भी उसके बारे में न केवल जाना जा सकता है अपितु

उसके प्रकाश, उसकी क्षमताओं को भी जाना और ग्रहण किया जा सकता है ।

४—स्पर्श वाली वस्तु या स्थान में भौतिक व रासायनिक दृष्टि से किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता । यदि उसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन भी हो जाये तो भी वह संस्कार कहीं नहीं जाते ।

५—व्यक्ति जितना प्राणवान या शक्तिसम्पन्न हो उसी अनुपात पर अनुभूति अधिक स्पष्ट होगी ।

डा. जानसन ने इस साइकिक ईथर सिद्धान्त की जो फल श्रुतियाँ निकाली हैं वे मन्दिरों, पवित्र जल, भस्म देवालयों और सिद्ध पीठों की उपयोगिता का दर्शन कराती हैं । सिद्धान्त एक ही है कि ऐसे स्थानों में महापुरुषों के मन और उनके संस्कार उस भूमि के कण—कण में बस जाते हैं और उनका चिरकाल तक अस्तित्व बना रहता है । योगी आत्मा या महापुरुष इन वस्तुओं या स्थानों को अपने संकल्प बल से इतना ऊर्जा सम्पन्न बना देते हैं कि वहाँ आने वाले दुर्बल मनोबल के व्यक्ति भी अनुभूतियों की, साधना की सफलता और स्वल्प प्रयास में ही शक्ति पा जाते हैं । यह शक्ति आत्म विकास का तो प्रमाण ही है, पर उसका शारीरिक, मानसिक और सांसारिक कठिनाइयों में भी उपयोग होता है । महापुरुषों और सिद्धपीठों की यात्रायें और सत्संग इसी आधार पर आयोजित होते हैं ।

"ऐसे स्थानों पर 'सम्मिलित मनःशक्ति' 'एसोसियेटेड साइकिक ईथर' विनिर्मित हो जाता है । एक ही तरह पवित्रता के, करुणा उदारता और महानता के संस्कार उमड़ते रहने से उस स्थान पर उन संस्कारों का पुञ्ज बन जाता है । जिससे वहाँ पहुँचने वाले दुष्ट और दुराचारी कमजोर मनःस्थिति या भूत प्रेत आदि बाधाओं से ग्रस्त लोग भी जाकर प्रसन्नता अनुभव करते और शक्ति लेकर लौटते हैं । गायत्री तपोभूमि मथुरा और ब्रह्मवर्चस हरिद्वार को इसी तरह प्रयत्नपूर्वक संस्कारित किया गया है । यह संस्कार सैकड़ों वर्षों तक हिलाये नहीं हिल सकते । अपितु ऐसे स्थान पर समर्थ सत्ता की स्फुरणाओं, स्पर्शजन्य पवित्रता का, भावनाओं का चिरकाल तक लाभ लिया और अपनी उपासना को शीघ्र सफल किया जा सकता है ।

तीर्थ परम्परा का पुनर्जीवन शक्तिपीठ के रूप में

भारत में इन दिनों तीर्थों का स्वरूप प्रायः पर्यटन केन्द्रों जैसा बन गया है । उनका स्थान चयन ऐसा हुआ है जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द मिल सके । नदी, सरोवर, पर्वत, पुरातत्व सन्दर्भ, ऐतिहासिक घटना–क्रम आदि के जुड़े रहने से वे स्थान सहज आकर्षण के केन्द्र हैं । चिरकाल से यात्रियों का आना–जाना उधर बना रहता है । इसलिए ठहराने, घूमने, देखने आदि की वे सुविधाएँ भी विकसित होती चली आई हैं । उन्हें देखने से पर्यटक को प्रसन्नता होती है । सम्पन्न लोगों ने धर्म श्रद्धा अथवा यश कामना से प्रेरित होकर इन स्थानों में भव्य मन्दिर भी बना दिये हैं । धर्माध्यक्ष भी श्रद्धालु जन मानस से अधिक सम्पर्क बनाने और अधिक लाभ उठाने की दृष्टि से अपने डेरे इन्हीं स्थानों में डाले रहते हैं, इन्हीं सबके समन्वय से वह स्थिति बनी है जो आज के तीर्थस्थानों में देखी जाती है ।

तीर्थयात्रियों की संख्या हर साल बढ़ती जाती है । इसका कारण लोगों की श्रद्धा अथवा तीर्थों की उपयोगिता का बढ़ना नहीं, वरन् यह है कि पर्यटन के लिए इन्हीं परम्परागत स्थानों के अतिरिक्त और कोई अधिक उपयुक्त दीख नहीं पड़ते । फिर पर्यटक को यह कहने समझाने का भी अवकाश तो मिल जाता है कि उन्होंने धर्म प्रयोजन के लिए समय और पैसा खर्च किया है । सरकार इस सन्दर्भ में आर्थिक दृष्टि से सोचती है । अधिक टैक्स मिलने एवं अधिक लोगों को अधिक काम मिलने, अधिक बिक्री होने से समृद्धि बढ़ने जैसे लाभों को देखते हुए सरकारी तन्त्र पर्यटन को प्रोत्साहन देते हैं और पर्यटकों के लिए कई तरह की सुविधा उत्पन्न करते हैं । व्यवसायी क्षेत्रों के प्रोत्साहन से ऐसे मेले–ठेले इन तीर्थों में जुड़ते रहते हैं, जिनमें अधिक भीड़ पहुँचने से अधिक बिक्री होने और अधिक लाभ उठाने का अवसर मिले । तीर्थयात्री उनकी व्यवस्था से लाभ उठाते और सुविधा अनुभव करते हैं ।

ऊपर की पंक्तियों में उन प्रयोजनों की चर्चा की गई है, जिनके आधार पर आज की तीर्थ यात्रा एवं तीर्थ स्थानों की महिमा का ढाँचा खड़ा है ।

चलते हुए पर्यटन प्रवाह को ही तीर्थ श्रद्धा कहा जा सकता है । इसमें जन साधारण की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता पूरी होती है । इस उत्साह से लाभ उठाने वाले अन्यान्य वर्ग उसे किसी न किसी रूप में प्रोत्साहित करते रहते हैं फलतः तीर्थों का विस्तार और आकर्षण बढ़ता जाता है । भीड़ें भी अपेक्षाकृत अधिक होने लगी हैं ।

इस स्थिति को धर्म और अध्यात्म के उन सिद्धान्तों के साथ संगति बिठाने पर निराशा ही हाथ लगती है । पर्यटन उपक्रम तो संसार के अन्य देशों में भी चलता है, उसे तो विनोद प्रेमी अन्यत्र भी पूरे उत्साह के साथ अपनाये हुए हैं, फिर भारत में ही उसे पुण्य परमार्थ का प्रतीक क्यों माना जाय ? धर्म श्रद्धा के आधार पर उत्पन्न हुई उमंगों का जब अन्य प्रकार से श्रेयस्कर उपयोग हो सकता है, तो क्यों उसे ऐसे ही खोटे मनोरंजन के लिए अस्त–व्यस्त होने दिया जाय । पर्यटन अपनी जगह पर एक उपयोगी कृत्य है । वह अपने स्थान पर यथावत् बना रहे और अपने ढर्रे पर चलता रहे, उसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती । असमंजस इस बात का है कि धर्म श्रद्धा के पुण्य परमार्थ के जिस मूलभूत उद्देश्य को लेकर तत्त्वदर्शी ऋषियों ने इन पुनीत धर्म केन्द्रों की स्थापना की थी और उनके आकाश–पाताल जैसे महात्म्य बताकर जनमानस को उनके साथ सम्बद्ध होने के लिए आकर्षित किया था, उस महान लक्ष्य की पूर्ति का क्या हुआ, उन उद्देश्यों की पूर्ति कहाँ हुई ? देवताओं के दर्शन एवं जलाशयों के स्नान से तो आत्म लाभ नहीं मिल सकता । उन्हें प्राप्त करने के लिए तो ऐसी प्रेरणायें चाहिए जो अन्तरात्मा में उच्चस्तरीय आदर्शों के लिए गहन श्रद्धा उत्पन्न कर सकें । अस्त–व्यस्त और विक्षुब्ध मनः स्थिति को सान्त्वना और दिशा देने के उद्देश्य से तीर्थ बने थे । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए किस तीर्थ में कितनी व्यवस्था है ? यह खोजने पर निराशा ही हाथ लगती है ।

ऋषियों ने तीर्थों को प्राकृतिक सौन्दर्य तथा ऐतिहासिक स्थलों पर स्थापित इसलिए किया था कि आगन्तुकों को प्रकृति के सानिध्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्रेरणाओं का लाभ भी मिलता रहे । यह बाह्य प्रयोजन हुआ, मूल उद्देश्य यह था कि उपयोगी वातावरण में कुछ समय ठहर कर अपनी

अस्त–व्यस्त मनः स्थिति को संतुलित करलें तकि भविष्य के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ प्राप्त कर सकने का बहुमूल्य लाभ मिले । इसके लिए परामर्श प्रवचन का व्यवस्थित क्रम तो चलना ही था, उससे भी बड़ी बात उस वातावरण की थी जिसमें कुछ दिन ठहर जाने पर ही मनुष्य नवजीवन के लिए उपयुक्त प्रेरणाएँ ग्रहण करता था । लोग तीर्थस्थानों में व्रत, अनुष्ठान करने जाते थे । वहाँ रहकर प्रायश्चित करते और आत्म चिन्तन के आधार पर भावी जीवन क्रम का नव निर्माण करते थे । तीर्थ पुरोहित इस सन्दर्भ में उन्हें पूरा–पूरा सहयोग करते थे । इन स्थानों में ऋषिकल्प मनीषियों के द्वारा संचालित आरण्यकों की विशेष व्यवस्था थी जिनमें ठहर कर तीर्थ यात्री अपना आन्तरिक कायाकल्प करने में, व्यक्तित्व को परिष्कृत परिमार्जित करने में उत्साहवर्धक सफलता प्राप्त कर सकें । इन्हीं उपलब्धियों में तीर्थ सेवन का महात्म्य और पुण्य फल केन्द्री भूत रहता था । इस उद्दश्य में जो जितना सफल होता था, वह उतने ही बड़े पुण्य फल से प्रत्यक्ष लाभान्वित होता था । आत्म साधना करने और उच्चस्तरीय प्रेरणा ग्रहण करने की उपलब्धि को तीर्थ यात्रा की आत्मा समझा जा सकता है । जलाशयों का स्रोत, देवालयों का दर्शन तो उस पुण्य प्रयोजन का ब्राह्य कलेवर एवं शोभा श्रृंगार जैसा है ।

जन कल्याण के जिस उद्देश्य से तीर्थो की स्थापना की गई और उसकी सफलता के लिए उत्साहित होकर अधिक लोगों को वहाँ पहुँचने की प्रेरणा दी गई, यह बात सामान्य नहीं असामान्य थी । यदि पर्यटन जैसा छोटा लाभ ही प्रतीत होता हो तो दूरदर्शी ऋषि इस झंझट में स्वयं न पड़ते अपनी सारी प्रतिभा को दाँव पर लगाकर तीर्थों का वह भावनास्तर और दर्शनीय ढाँचा खड़ा न करते, जिसमें उनका अजस्र पुरुषार्थ और सघन मनोबल लगा हुआ है । आद्य शंकराचार्य ने देश के चारों कोनों पर चार 'धाम' स्थापित किये । वे प्रकारान्तर से सत्रीय विश्व विद्यालय थे । बौद्ध काल में नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय बने थे और उनमें प्रशिक्षण प्राप्त करके संसार भर में परिव्राजकों के जत्थे धर्म चक्र प्रवर्तन के लिए पहुँचते थे । जन साधारण को भी अनेकानेक बौद्ध बिहारों में रहकर उच्चस्तरीय जीवन यापन की शिक्षा

मिलती थी । तीर्थों का असली स्वरूप भी यही था । भगवान् बुद्ध ने प्राचीन तीर्थों का जिस उपयोगी ढंग से पुनर्निर्माण किया उसी का अनुकरण हिन्दू धर्मानुयायियों ने भी अपने-अपने ढंग से किया और तीर्थों की उपयोगिता आवश्यकता को समझते-समझाते हुए उनकी स्थापना का उत्साह उत्पन्न किया । धनिकों के सहयोग से एक के बाद एक तीर्थ बनते चले गये । शक्तिपीठ, ज्योतिलिंगधाम इसी स्तर के धर्म संस्थान थे । आद्य शंकराचार्य द्वारा विनिर्मित चारों धामों की इस सन्दर्भ में विशिष्ट गणना की जाती है । देश के प्रायः सभी धर्म सम्प्रदायों ने अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सामर्थ्यानुसार छोटे-बड़े तीर्थों की स्थापनाएँ की हैं ।

तीर्थों के निमित्त भारत की अपार जनशक्ति और धनशक्ति नियोजित है । देखना यह है कि इतनी सुविस्तृत शक्ति का जिस उद्देश्य के लिए उपयोग हुआ है वह पूरा हुआ या नहीं ?

धर्म तन्त्र के विशाल कलेवर में तीर्थ प्रक्रिया का अति महत्वपूर्ण स्थान है । उसमें प्रतिगामिता का घुस पड़ना समाज में अवांछनीयता के अभिवर्धन का द्वार खोलता है । मात्र पर्यटक केन्द्रों के रूप में उनका ढोंग ढकोसला खड़ा रहना एक प्रकार से धर्मत्व का उपहास है । समय की माँग है कि यथा स्थिति वही ही रहनी चाहिए । अवांछनीयता और अनुपयोगिता देर तक जीवित नहीं रह सकती । विवेकशील जागरूकता-जब भी अँगड़ाई लेगी उन्हें उलट कर रख देगी ।

समय रहते विकृतियों का सुधार कर लेने में ही बुद्धिमानी है । धर्मतन्त्र में यदि प्रतिगामिता घुसी रही उसने व्यक्ति और समाज की सुख शान्ति में कोई योगदान न दिया तो यह भी निश्चित है कि श्रम और धन का अपव्यय जन विवेक को सहन न हो सकेगा और अनौचित्य के प्रति उभरने वाला आक्रोश उसे उलट कर रख देगा, तब तीर्थ स्थानों की गरिमा भी जीवित न रह सकेगी, लोग देव मन्दिरों की प्रतिमाएँ अजायबघर में रख देंगे, उनकी इमारत तथा सम्पत्ति का लोकपयोगी कार्यों में उपयोग करने लगेंगे । यह कार्य आक्रोश पूर्वक होगा तो धर्म तन्त्र की तीर्थ परम्परा के विरुद्ध ऐसे आरोप लगेंगे कि भ्रान्त जनमानस में घुसी हुई घृणा, धर्म तन्त्र को चिरकाल

के लिए अश्रद्धा के गर्त में धकेल देगी । ऐसी स्थिति का उत्पन्न होना असंभव नहीं है । आज के बुद्धिवादी युग में धर्मतन्त्र की तीर्थ प्रक्रिया की अवांछनीयता देर तक जन आक्रोश से बची नहीं रह सकती । आक्रामक परिवर्तन से हटाया गया धर्मानुशासन मनुष्य समाज की इतनी बड़ी क्षति करेगा जिसकी कल्पना मात्र से आखों के आगे अँधेरा छा जाता है ।

चेतने का ठीक समय यही है । विलम्ब एक क्षण का भी भारी पड़ेगा । उचित यही है कि धर्म तन्त्र को उसके वास्तविक स्वरूप में रखा जाय और प्राचीन काल की तरह समग्र मानवी प्रगति के लिए उच्चस्तरीय अनुदान दे सकने की स्थिति में उसे फिर से प्रतिष्ठित किया जाय । भारत में धर्म–तन्त्र और तीर्थ परिकर एक प्रकार से अति घनिष्ठ हो गये हैं । दोनों की स्थिति एक प्रकार से अन्योन्याश्रित जैसी बन गई है । ऐसी दशा में उचित यही है कि इस पुण्य परम्परा के चिर प्राचीन स्वरूप को चिरनवीन के साथ मिलाकर ऐसी प्रेरणा उत्पन्न की जाय जिससे धर्मतत्व के प्रति लोक श्रद्धा में कमी न आ सके । उसकी उपयोगिता पर कोई उंगली न उठा पाये । उसकी आवश्यकता से किसी को इंकार न करते बन पड़े ।

समय की माँग को पूरा करने के लिए युग परिवर्तन की इस पुण्य वेला में गायत्री तीर्थ को ऐसा स्वरूप दिया गया है जिससे इस उद्देश्य की पूर्ति हो सके, जिसके लिए महा मनीषियों ने इस परम्परा का प्रचण्ड मनोबल और समर्थ पुरुषार्थ के आधार पर प्रचलन किया था । वह प्रचलन अभी जीवित है, मरम्मत कर देने भर से अभी काम चल सकता है, वह स्थिति अभी नहीं आ पाई है कि तीर्थ परम्परा को खण्डहर में धकेल दिया जाय और उसके मलवे के हटाने की व्यवस्था बनाई जाय ।

ब्रह्मवर्चस् आरण्यक की पहली मंजिल में गायत्री शक्तिपीठ की स्थापना की गई है । उसमें इस महामन्त्र के २४ अक्षरों में सन्निहित प्रेरणाओं एवं सामर्थ्यों की प्रतीक २४ शक्ति प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं । सामान्यतया अन्य देवालयों की तरह उसमें भी पूजा अर्चन एवं दर्शन–झाँकी का क्रम चलेगा, पर इसे प्रेरणा परिचय माना जायगा और प्रयत्न यह किया जायगा कि सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति को गायत्री की प्रेरणा ऋतम्भरा–प्रज्ञा

को हृदयंगम करने का अवसर मिले, साथ ही वह मार्ग भी मिले जिससे प्रगति पथ पर चलने की प्रचण्ड प्रेरणा एवं समर्थता की प्रचुर परिमाण में उपलब्धि होती है। शिक्षा और साधना के दोनों तत्त्व प्राचीनकाल की तीर्थ यात्रा के साथ जुड़े रहते थे। ब्रह्मवर्चस की शक्तिपीठ के सानिध्य में जो थोड़ा या बहुत समय तक रह सकेंगे, वे उसी अनुपात में उपयोगी ज्ञान एवं आत्म बल उपलब्ध कर सकेंगे–ऐसी सुनियोजित व्यवस्था बनाई गई है। प्राचीन काल की ऋषि प्रणीत परम्परा का जीवन्त स्वरूप सर्व साधारण के सामने प्रस्तुत रह सके, इसी सामयिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए गायत्री शक्ति पीठ की रीति–नीति एवं गतिविधि का निर्धारण किया गया है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गायत्री शक्तिपीठ में निम्न व्यवस्थाएँ विशेष रूप से रहेंगी :–

(१) हर यात्री दर्शक को गायत्री तत्वज्ञान की जानकारी एवं उसे अपनाने की प्रेरणा देने का प्रभाव पूर्ण क्रम (२) अपने सामान्य जीवन क्रम के साथ चलाई जा सकने वाली सुगम उपासना का मार्ग दर्शन (३) उपासना करने के इच्छुक व्यक्तियों को गायत्री माता का छोटा चित्र एवं उपासना विधि भेंट में देने का क्रम (४) विशेष रूप से लिखे गये सुबोध एवं प्रेरणाप्रद गायत्री साहित्य के सस्ते मूल्य पर मिलने की व्यवस्था (५) जो व्यक्ति सामान्य गायत्री उपासना का क्रम चलाते हैं उन्हें विशिष्ट साधना के लिए वहाँ रहकर साधना करने, मार्ग दर्शन पाने की व्यवस्था। ब्रह्मवर्चस् और उसके अन्तर्गत सारे देश में बन रहे २४ गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना के पीछे यही उद्देश्य सन्निहित हैं, उन्हें पूरा करने का प्राणपण से प्रयास रहा है।

त्रिपदा की जीवन्त प्रतिभा ब्रह्मवर्चस

गायत्री को त्रिपदा कहा गया है उसके तीन चरणों में सत् चित आनन्द की अनुभूति, सत्यं शिवम् सुन्दरम् की संवेदना, सत् रज, तम की प्रेरणा एवं उत्पादन अभिवर्धन परिवर्तन की प्रकृति लीला का समान दर्शन किया जा सकता है। वेद गायत्री माता के पुत्र हैं उनका विषय ज्ञान, कर्म और उपासना है। इन्हीं को साधना क्षेत्र में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग कहा गया है। देवताओं में तीन प्रधान हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश। देवियों में तीन

प्रमुख हैं । सरस्वती, लक्ष्मी, काली । इनके द्विधा त्रिवेणी संगमों को गायत्री महाशक्ति की तीन धाराएँ कहा जाता है । त्रिपदा गायत्री का यही सात्विक स्वरूप है ।

त्रिपदा की तीन रूपों में त्रिकाल संध्या का विधान है । प्रातःकाल को ब्राह्मी, मध्यान्ह को वैष्णवी, सायंकाल को शांभवी कहा जाता है । इनमें जो त्रिविध प्रेरणाएँ एवं क्षमतायें भरी पड़ी हैं, उन्हें आस्तिकता, आध्यात्मिकता, एवं धार्मिकता कहा जाता है ।

त्रिपदा की उपासना में तीन फल बताये गये हैं—आस्थाओं में मुक्ति विचारणाओं में स्वर्ग और व्यवहार में सिद्धि—समृद्धि । दूसरी अलंकारिक विवेचनाओं में इन्ही को अमृत, कल्पवृक्ष और पारस कहा गया है । इस महान अवलम्बन को अपना कर आत्मिक प्रगति के तीनों सोपान करतलगत हो सकते हैं । नर पशु से मनुष्य बनने का सौभाग्य ईश्वर कृपा से मिल गया, अब अपना पुरुषार्थ परम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रचण्ड पराक्रम करने में है । यह कार्य गायत्री उपासना की सहायता से भली प्रकार सम्भव हो सकता है । सच तो यह है कि साधना विज्ञान का समूचा क्षेत्र गायत्री महाशक्ति के अन्तर्गत ही आता है । उसी महानद की छोटी—बड़ी शाखा— प्रशाखा नाम रूप की भिन्नता रहते हुए भी अपना प्राण प्रवाह उसी उद्गम केन्द्र से उपलब्ध करती है ।

सामान्य मनुष्य से महामानव, ऋषि और देवता के रूप में विकसित करते हुए पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाने की सामर्थ्य गायत्री महाशक्ति में विद्यमान है । कठिनाई एक ही है कि उसका विज्ञान और विधान बुरी तरह लड़खड़ा गया है । खण्डहरों के चिन्ह प्रतीकों में इतिहास की स्मृतियाँ ही शेष रहती हैं । उसका स्वरूप एवं प्रभाव कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता । खण्डहरों के सहारे पुरातत्ववेत्ता उसकी भूतकालीन परिस्थितियों तथा स्थापना का पता भर चला पाते हैं । वे भी ऐसा नहीं कर सकते कि उस टूट—फूट से बचे खुचे टेढ़े मेढ़े टुकड़ों को जोड़कर प्राचीन काल जैसा किला और राज्य शासन खड़ा कर सकें । गायत्री सत्ता का स्वरूप बुरी तरह विकृत हुआ है । मध्यकालीन अन्धकार युग के आक्रमणों ने उस महान संरचना को एक प्रकार

से धराशायी ही कर दिया है । आज गायत्री के नाम पर जो कुछ प्रचलन है उसे अब ऐसे ही ध्वंसावशेष की संज्ञा दी जा सकती है, जिसमें पुरातन का गौरव तो झलकता है पर वर्तमान में कुछ प्रयोजन नहीं होता । इस क्षति को ऋषि संस्कृति की महानतम हानि कह सकते हैं । किसी का कलेजा निकाल लेने के उपरान्त जीवित मृतक का जो ढ़ोंग खड़ा रहता है, लगभग वैसा ही स्वरूप गायत्री तत्वज्ञान का शेष रह गया है । अन्धविश्वासी छुट–पुट क्रिया कृत्यों की चिन्ह पूजा करके लम्बी चौड़ी मनोकामना पूरी होने के सपने देखते रहते हैं और निहित स्वार्थ, इस महान परम्परा की खाल ओढ़कर अपना उल्लू उसी तरह सीधा करते रहते हैं, जैसे सिंह का आवरण ओढ़कर कोई गधा वन जीवों पर अपना आतंक जमाता रहता था । अन्य क्षेत्रों की तरह गायत्री उपासना के क्षेत्रों में भी मूढ़ मान्यताओं और अवांछनीयताओं की इतनी भरमार हो गई है कि तथ्यान्वेषी वर्ग को गहराई से वस्तु स्थिति का पता चलाने पर गहरी निराशा ही हाथ लगती है ।

प्राचीन काल की गायत्री गरिमा और आज की दयनीय दुदर्शा की प्रशंसा निन्दा करते रहने पर मन तो हल्का हो सकता है पर उतने भर से किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती है । आवश्यकता इस बात की है कि नये सिरे से पुनर्निमाण का प्रयत्न किया जाय और पुनर्जीवन जैसी परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए भागीरथ प्रयत्न किया जाय । खोये हुए को खोज निकालना भी उतना ही महत्वपूर्ण कार्य है, जितना कि नये सिरे से नये उत्पादन का ढाँचा खड़ा करना । छिपी हुई भू सम्पदा का उत्खनन कम महत्व का नहीं है । सामान बनाने वाले उद्योगों की अवहेलना न करते हुए भी उपलब्ध साधनों और ऊर्जा का सदुपयोग जान लेने के प्रयासों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए । मानवी सुख समृद्धि के लिए वैज्ञानिक उपलब्धियों और मानवी श्रम कौशलों को बढ़ाने का भरपूर प्रयत्न होना चाहिए किन्तु यह नहीं भुला देना चाहिए कि मनुष्य शरीर नहीं आत्मा है । शरीर की सुविधा तक ही साधन सामग्री की समृद्धि की उपयोगिता है । आत्मा को वे विभूतियाँ चाहिए जो आस्थाओं, विचारणाओं और गतिविधियों को उत्कृष्टता के साथ अविच्छिन्न रूप से जोड़े हुई हैं । विभूतियों का उत्पादन जिस आत्म साधना के

सहारे होता है, उसमें गायत्री का वर्चस्व असंदिग्ध है । अतीत की भारतीय गरिमा के साथ गायत्री तत्वज्ञान और व्यवहार विज्ञान को इस सीमा तक जुड़ा हुआ देखा जा सकता है कि उनको एक दूसरे से अलग करके सोचने की बात बनती ही नहीं है ।

आज की स्थिति में आध्यात्म क्षेत्र की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि ऋषि प्रणीत महान तत्वज्ञान के गायत्री पक्ष का फिर से अनुसंधान किया जाय । पुनर्निर्धारण, पुनर्निर्माण और पुनर्जीवन को लक्ष्य बनाकर यदि नये सिरे से समर्थ अनुसंधान किया जा सके तो वे आधार फिर से उपलब्ध हो सकते हैं जिसमें भारतीय गरिमा की महानता को चरम सीमा तक पहुँचाने का अवसर मिला था । इस दिशा में यदि संतोष जनक सफलता मिल सके, उसके प्रति जन साधारण में फिर से निष्ठा उत्पन्न हो सके, उस साधना पुरुषार्थ के लिए प्राणवान व्यक्तियों में साहस जग सके तो निश्चय ही उसके महान परिणाम होंगे । उतने ही महान जितने कि सतयुगी स्वर्णिम इतिहास के हर पन्ने पर बिखरे पड़े हैं ।

अपने युग की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि बुद्धिवाद है । इन दिनों प्रत्यक्ष वाद का बोलवाला है । विज्ञान ने दर्शन को भी प्रभावित किया है । और सर्वत्र लक्ष्य और तर्क की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही किसी बात को स्वीकार करने की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ चली है । इसे युग प्रवाह कह सकते हैं । जन-मानस पर विज्ञान युग की यह छाप इतनी गहरी पड़ी है कि उसे झुठलाया नहीं जा सकता । यों अन्धश्रद्धाओं और झूठी मान्यताओं का दौर भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है । रूढ़िवादिता भी पिछड़े वर्गों में अपनी जड़ें अभी भी जमाये बैठी है । किन्तु निश्चित रूप से वे युग आलोक में दिन-दिन फीकी पड़ती जा रही हैं । धूर्तों की धूर्तता और मूर्खों की मूर्खता की जीवन अवधि अब तेजी के साथ दिन-दिन घटती जा रही है । यह एक दृष्टि से उज्जवल भविष्य का एक चिन्ह है । पर इस प्रवाह में जिस बहुमूल्य सम्पदा के बह जाने का खतरा है वह है-श्रद्धा, उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तत्व के ऊपर ही मनस्वी गरिमा का, सामाजिक सुव्यवस्था का, सर्वजनीन सुख शान्ति का सारा ढाँचा खड़ा हुआ है ।

अन्ध श्रद्धा की हानियों को देखते हुए उसके प्रति लोक आक्रोश उभरा है । यहाँ तक तो औचित्य की सीमा है । खतरा वहाँ से आरम्भ होता है, जहाँ अध्यात्म का सारा ढाँचा ही लड़खड़ा जाने का भय है । जो मूलतः श्रद्धा के तत्वदर्शन का आश्रय लेकर ही खड़ा है । श्रद्धा और उत्कृष्टता एक ही लक्ष्य के दो नाम हैं । एक के बिना दूसरे का जीवित खड़ा रहना कठिन है ।

बुद्धिवादी युग के तूफानी प्रवाह से श्रद्धा को बचाया जाय । इसका एक मात्र उपाय यही है कि विज्ञान और अध्यात्म को परस्पर जोड़ दिया जाय । श्रद्धा को इतना बलवती बनाया जाय कि वह तर्क का दबाव सहन कर सके, इतना ही नहीं उससे बल भी प्राप्त कर सके । दीपक को हवा का झोंका बुझा देता है, पर ज्वलंत ज्वाला की लपटें पवन के सहयोग से क्रमशः प्रचण्ड ही होती चली जाती हैं । तत्वदर्शन और साधना विज्ञान के सहारे अध्यात्म का ढाँचा खड़ा है । इसकी आधार शिला श्रद्धा परक है । अब उसका स्थान अन्ध श्रद्धा को मिलता रह सके ऐसी सम्भावना प्रायः समाप्त ही हो गई है । युग की पुकार है कि युग में प्रगतिशील मनुष्य को जिस बात को अपनाने के लिए कहा जाय वह तर्क संगत, तथ्य सम्मत एवं प्रत्यक्ष प्रमाणों से समन्वित होना चाहिए । अध्यात्म को यदि जीवित रखना है तो अपने को इसी कसौटी पर कसे जाने के लिए तत्पर करना होगा, बुद्धिवाद को कोसने भर से इस युग में किसी भी मान्यता का पुरातन की दुहाई देकर जागृत रह सकना अब सम्भव नहीं रह गया है । समय को जितनी जल्दी पहिचाना जा सके और स्थिति का सामना करने के लिए जितनी जल्दी साहस जुटाया जा सके उतना ही उत्तम है ।

गायत्री उपासना को जन जीवन का अंग बनाने का व्यापक प्रयत्न गायत्री परिवार द्वारा होता रहा है, उसमें सफलता भी मिली है, करोड़ों व्यक्तियों ने उस तत्वदर्शन को समझा और उसका आश्रय ग्रहण किया उस पर पड़ रहे बुद्धिवाद, तर्कवाद के दबाव का प्रत्युत्तर अब ब्रह्मवर्चस् से दिया जा रहा है ।

इस नूतन तीर्थ, प्रज्ञा-प्रतिष्ठान मातृ मंदिर के माध्यम से गायत्री

उपासना के साथ-साथ जन मानस में गहराई तक धँसी कुत्सित विचारणा को धोया और साफ किया जायगा । नव युग का आधार उत्कृष्ट चिन्तन ही होगा, इसी कल्पवृक्ष पर आदर्श कतृत्व के फल लगते ही उन्हीं से परिपुष्ट हुआ जन समाज सतयुग की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में समर्थ होता है । इस सारे प्रयास की सफलता अध्यात्म तत्वज्ञान की प्रखरता पर निर्भर है । यह प्रखरता प्रयोग और परीक्षण की भट्टी में तपाये जाने से ही उत्पन्न हो सकती है । ब्रह्मवर्चस् को पकाने की भट्टी और ढालने की फैक्ट्री का समन्वित रूप माना जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी ।

ब्रह्मवर्चस् को त्रिपदा गायत्री का मूर्तिमान स्वरूप माना जा सकता है । उसके द्वारा संचालित गतिविधियों को गायत्री में सन्निहित तत्वज्ञान और प्रेरणा प्रवाह को त्रिवेणी संगम कहा जा सकता है ।

ब्रह्मवर्चस् में तीन मंजिलें हैं । तीनों में गायत्री के अक्षरों के अनुरूप २४-२४ कमरे हैं । पहली मंजिल के २४ कमरों में गायत्री महाशक्ति की २४ शक्ति धाराओं की प्रतीक २४ प्रतिमाओं की स्थापना है । जिनके आधार पर दर्शनार्थियों को गायत्री के तत्वदर्शन और साधना विधान का सामान्य परिचय मिलता रहेगा । इनमें जो शक्ति धारा जिस साधक के अनुरूप पड़ेगी वह उसकी समीपता से तदनुरूप लाभ उठा सकेगा ।दूसरे कक्ष के २४ कमरों में गायत्री की उच्चस्तरीय साधना के लिए मात्र ४८ साधक एक समय में रहकर एक महीने की शिक्षा और साधना का निर्धारण पूरा कर सकते हैं । गायत्री की वैदिक और सावित्री की तान्त्रिक साधनाओं का उस साधना क्रम में सन्तुलित समन्वय किया गया है । हर साधक की मनः स्थिति और परिस्थिति का विशेष निरीक्षण करके तदनुरूप उन्हें ऐसा साधना क्रम बताया जाता है जो उनके लिए सरल रूचिकर एवं उपयोगी सिद्ध हो सके । हर साधक का पृथक साधना क्रम रहते हुए भी (१) साधना (२) ब्रह्मविद्या (३) लोकनिर्माण के तीनों ही तथ्य ब्रह्मवर्चस प्रशिक्षण में जुड़े हुए हैं । उसे उच्चस्तरीय साधना व्रत कहा जा सकता है । योग पक्ष में कुण्डलनी जागरण की दोनों ही विधायें इस साधना उपक्रम में रखी गई हैं, शिक्षण काल एक महीने का है पर व्यस्त लोगों के लिए इसी उपक्रम का संक्षिप्त रूप दस-दस

दिन के छोटे ब्रह्मवर्चस् सत्रों में भी चलता रहेगा । अधिक और कम समय निकाल सकने वाले व्यक्ति अपने-अपने प्रयास के अनुरूप लाभ उठा सकेंगे ।

ब्रह्मवर्चस् का तीसरा कक्ष है शोध संस्थान । इसके लिए २४ कमरे सुरक्षित रखे गये हैं । इसमें दो वर्ग होंगे (१) अनुसंधान (२) प्रयोग परीक्षण

(१) प्राचीन एवं अर्वाचीन अध्यात्म प्रतिपादनों का तुलनात्मक अध्ययन, उसकी यथार्थता एवं उपयोगिता का परीक्षण आज की स्थिति में जो उपयोगी है उसका निर्धारण, इसके लिए अपना विशाल पुस्तकालय । विश्व विद्यालयों तथा बड़े पुस्तकालयों से दुर्लभ पुस्तकें उधार लेने का क्रम बनाया जायगा । इन विधाओं के मनीषियों से सम्पर्क साधकर उनके ज्ञान परामर्श का लाभ उठाया जायगा । इस कक्ष में विज्ञ विद्वानों की श्रम साधना निरन्तर चलती रहेगी ।

(२) प्रयोग परीक्षण में एक साधन सम्पन्न प्रयोगशाला है । इसमें साधनाओं के द्वारा मानवी शरीर और मन पर पड़ने वाले प्रभाव का गंभीर परीक्षण किया जाता रहेगा और परखा जाता रहेगा कि किस साधना का किस प्रयोजन के लिए किस प्रकार कितना उपयोग हो सकता है ।

इसके अतिरिक्त बड़ा प्रयोजन है यज्ञ विज्ञान के असंख्य प्रयोजनों में असंख्य प्रकार की प्रतिक्रियाओं का परीक्षण । यज्ञ और गायत्री परस्पर अविछिन्न रूप से सम्बद्ध हैं । एक को भारतीय संस्कृति की जननी और दूसरे को भारतीय धर्म का पिता कहा जाता है । इन दिनों यज्ञ कृत्य की गणना सामान्य पूजा उपचार में होती है । पर उसको जो प्रधानता ऋषियों ने दी उसे देखते हुए स्पष्ट है कि यह प्राणि जगत् और सृष्टि परिवार को प्रभावित करने वाली असाधारण प्रक्रिया है । यज्ञ का भावना पक्ष तो उच्चस्तरीय है ही । विधान पक्ष भी कम महत्व पूर्ण नहीं है । यज्ञ उपचार को शारीरिक और मानसिक चिकित्सा के लिए इस प्रकार प्रयुक्त किया जा सकता है कि उसके सहारे कठिन शारीरिक और जटिल मानसिक रोगों की चिकित्सा हो सके । व्यक्तित्व के समग्र विकास में पुण्य प्रक्रिया का समुचित योगदान मिल सके । होम्योपैथी, एलोपैथी, क्रोमोपैथी, इलैक्ट्रोपैथी आदि प्रचिलित सभी

चिकित्सा विज्ञानों को पीछे छोड़कर यज्ञोपैथी अगले दिनों संसार की सर्वश्रेष्ठ उपचार पद्धति और अभिवर्धन प्रक्रिया बन सकती है ब्रह्मवर्चस की प्रयोगशाला में इसी सन्दर्भ का सुव्यवस्थित परीक्षण उच्च शिक्षित वैज्ञानिकों द्वारा आरम्भ किया गया है ।

मनुष्यों के अतिरिक्त वृक्ष, वनस्पति, वायुमण्डल, जीवाणु, विषाणु, कृमिकीट, जलचर, थलचर, नभचर यज्ञ प्रक्रिया से किस सीमा तक किस प्रकार प्रभावित होते हैं उसका परीक्षण भी इसी प्रयोगशाला में होगा । इसके लिए बहुमूल्य उपकरण मँगाये गये हैं । कुछ और मँगाये जा रहे हैं ।

ब्रह्मवर्चस् आरण्यक (१) गायत्री शक्तिपीठ (२) आत्मोत्कर्ष आरण्यक (३) शोध संस्थान के त्रिविधि कार्यक्रमों को लेकर जिस तत्परता के साथ कार्य क्षेत्र में उतरा है, उसे देखते हुए उसके सत्परिणामों से उज्ज्वल भविष्य की संरचना में पूरा–पूरा योगदान मिलने की संभावना है ।

प्राचीन काल में गायत्री का उद्भव, मध्यकाल में उसका वर्चस्व जिस श्रद्धा भरे वातावरण में हो सका और अब नवयुग के सृजन में उसका जो योगदान मिलने जा रहा है उसे देखते हुए अब इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि गायत्री की गरिमा हर दृष्टि से मानवी प्रगति में असाधारण रूप से सहायक रही है, और रहेगी । ऐसी दशा में जो उसका दार्शिनिक मान है वैसा ही प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले प्रतीक क्षेत्र में भी मिलना चाहिए । प्रेरणा केन्द्रों में, तीर्थो में भी गायत्री की गरिमा उसकी महानता के अनुरूप परिलक्षित होनी चाहिए थी ।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि गायत्री का कोई ऐसा तीर्थ दृष्टिगोचर नहीं होता जो उसकी सर्वोच्च गरिमा के अनुरूप हो । जहाँ–तहाँ छोटे–बड़े गायत्री मंदिर तो अनेकों बने हुये हैं पर उनकी ख्याति एवं विशिष्टता ऐसी नहीं है जिसे देव संस्कृति की जन्मदात्री की गरिमा के अनुरूप कहा जा सके । चारों धामों की ख्याति है । ज्योतिर्लिंग और शक्ति पीठ भी विख्यात हैं । इनमें शिव और शक्ति तत्वों की विशिष्टता का आभास मिलता है । चौबीस अवतारों में से सबका तो नहीं राम एवं कृष्ण का वर्चस्व विशेष है । अयोध्या और मथुरा के क्षेत्रों में उनके कर्तृत्व की जीवन्त स्मृतियाँ

विद्यमान हैं । अन्यान्य देवी–देवताओं, सन्तों धर्म–गुरुओं के स्मारक भी ऐसे हैं जो उनकी शान के अनुरूप हैं । बुद्ध, महावीर, नानक, गांधी, विवेकानन्द आदि के महान कृत्यों और प्रेरणाओं का स्मरण दिलाने वाले प्रेरणा केन्द्र भी ऐसे हैं जिन पर उनके अनुयायी गर्व कर सकते हैं । आगरा जाने पर ताजमहल, सिकन्दरा, फतेहपुर सीकरी, दयालबाग आदि स्मारकों को देखने से पता चलता है कि आत्मीय जनों के गौरव को चिरस्थायी बनाने के लिये भी उनके प्रियजन कितने भावभरे पुरुषार्थ कर सकते हैं ।

यह सब सुखद संरचनायें देखकर चित्त में प्रसन्नता भरने के समय पर एक बात बुरी तरह खटकती है कि गायत्री महाशक्ति के सन्दर्भ में ऐसा कुछ क्यों नहीं किया जा सका । जिसके २४ अक्षरों को चौबीस अवतार, चौबीस देवता, चौबीस ऋषि कहा जाता हो । ऋषि, महर्षि, राजर्षि और देवर्षि समान रूप से जिसकी एकनिष्ठ उपासना करते रहे हों । जिसकी व्याख्या में वेद शास्त्रों से लेकर वाल्मीकि रामायण, श्रीमद् भागवत्, देवी भागवत् जैसे धर्मग्रंथों का सृजन हुआ हो, उसकी स्मृति एवं प्रेरणा का उद्‌भव करने वाला समर्थ केन्द्र विख्यात तीर्थ देश भर में कहीं भी न हो यह इतने बड़े असमंजस की बात है, जिसका कारण ढूढ़ने पर बुद्धि को हतप्रभ रह जाना पड़ता है । बाईबिल के प्रसार में ईसाई समाज की कितनी धन शक्ति और जन शक्ति लगी हुई है, उसके लिए कितने गगन चुम्बी अति आकर्षक और दर्शनीय भवन बने हुए हैं, यह देखते ही बनता है । अन्यान्य धर्म सम्प्रदायों ने भी अपनी–अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुरूप ऐसा सृजन मिश्रत रूप से किया है जिसे देखकर जन साधारण को उनकी गरिमा समझने की प्राथमिक प्रेरणा सरलता पूर्वक मिल सके । भारतीय धर्म ग्रंथों में गीता के प्रचार विस्तार के लिए भी कई समर्थ संस्थान बने हैं । यह सब होते हुए भी गायत्री महाशक्ति के सम्बन्ध में किसी प्रेरणाप्रद तीर्थ पीठ का न होना एक ऐसा अभाव है जो देव संस्कृति के प्रत्येक अनुयायी का चेहरा उदास कर देता है ।

अगला समय प्रज्ञावतार के लीला संचरण का होगा । युग शक्ति के रूप में उसी का वर्चस्व दृष्टिगोचर होगा । ऐसी दशा में हमें भूतकाल की उपेक्षा का ऊहापोह न करके प्रस्तुत अभाव की पूर्ति के लिए बिना एक क्षण गँवाये

जुट जाना ही श्रेयस्कर है ।

ब्रह्मवर्चस् की स्थापना इसी प्रयोजन के लिए हुई है । सप्त ऋषियों के तप क्षेत्र गंगातट पर बना यह आश्रम गायत्री साधना की प्राचीन परम्परा को पुनर्जीवित करता है । जहाँ-जहाँ गंगा ने अपनी सात धाराओं को इन व्याहृति-ऋषियों को अपने हृदय मध्य में स्थान दिया है, उसी पुण्य क्षेत्र में ब्रह्मवर्चस की स्थापना हुई है । इस स्थापना में परम्परा का पुनर्जीवन प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

प्रतिभाओं की ढलाई का समर्थ सयंत्र ब्रह्मवर्चस

युग सृजन की महान प्रक्रिया में अग्रिम मोर्चा सम्भालने वालों में कुछ विशिष्ट क्षमता होनी चाहिए । उनमें सामान्य से अधिक ऊँचे स्तर की असामान्य प्रतिभा रहनी चाहिए । अन्यथा नव निर्माण में जिस प्रतिभा की आवश्यकता होती है उसके जुट न पाने से प्रगति पथ आगे बढ़ नहीं सकेगा । अग्रगामियों को सदा अतिरिक्त साहसिकता और विशिष्ट सूझ-बूझ का परिचय देना पड़ता है । अनुगमन और अनुशरण के लिए तो अनेकों को आसानी से तैयार किया जा सकता है । बहते हुए प्रवाह में तो तिनकों से लेकर हाथी तक को बहते देखा जा सकता है । कठिनाई प्रवाह का अवतरण करने और उसे उपयोगी दिशा में मोड़ने वाले मनस्वी भागीरथों को आवश्यकता के अनुरुप उत्पन्न करने की होती है । नव निर्माण के प्रथम चरण में ऐसी ही प्रतिभाओं की आवश्यकता पड़ेगी, उस दिशा में उपयुक्त आधार मौजूद हो और उपयुक्त साधन बनते जाँय तो अनुयायियों की, सहकर्मियों की कमी नहीं रहती ।

सैनिकों और सेनापतियों के बीच काम करने और शरीर सज्जा में बहुत थोड़ा सा ही अन्तर होता है । डाक्टरों से ज्यादा सक्रिय कम्पाउण्डरों और नर्सों को देखा जा सकता है । इंजीनियर योजना बनाते हैं और कारीगर इमारत खड़ी कर देते हैं । न्यायधीश फैसला करते हैं और उनका निर्देश पालन करने के लिए पुलिस जेल आदि के अनेकों कर्मचारी जुट पड़ते हैं । शासनाध्यक्षों के निर्णय को पूरा करने में विशालकाय सरकारी तन्त्र को अपनी

सारी शक्ति झोंकनी पड़ती है । कारखाने के मालिक, मैनेजर योजना बनाते हैं और उसे पूरा करने वाले हजारों श्रमिक लगाये रहते हैं ।

युग सृजन में रीछ बानरों की सेना का होना ही पर्याप्त नहीं था । उनमें नल नील को अंगद हनुमान को अग्रिम पंक्ति में खड़ा होना था । महाभारत में लाखों योद्धा लड़े थे पर उनका नेतृत्व कुछेक सेनापतियों को ही करना पड़ा था । सत्याग्रहियों में से प्रत्येक देश भक्त की प्रशंसा की जायगी उनमें गांधी, नेहरू, पटेल जैसे उत्कृष्ट नेतृत्व का अभाव रहा होता तो संख्या बल होने पर भी सफलता संदिग्ध रह सकती थी । कथाकार अगणित हैं पर बाल्मीकि व्यास जैसे सृजेता तो उँगलियों पर ही गिने जा सकते हैं । चिकित्सकों की संख्या ही जन सवास्थ्य का संरक्षण करती है पर उन पद्धतियों के निर्माण कर्त्ता चरक सुश्रुत जैसे मूर्धन्य ही उस परम्परा के कर्णधार रहे हैं । गंगा का लाभ असंख्य जीवितों और मृतकों को मिलता है पर उसका अवतरण भागीरथी प्रयत्न से ही सम्भव हो सका । लेखक थोड़े होते हैं, प्रकाशक मुद्रक विक्रेता पाठक अगणित । अभिनेता थोड़े हैं और दर्शक अधिक । रेल में संचालक थोड़े होते हैं पर यात्री अनेकों । संख्याबल के महत्व को अमान्य नहीं किया जा सकता । किन्तु अग्रम पंक्ति में खड़े होने वाले नेतृत्व के बिना संसार में वैसी ही रिक्तता छाने लगेगी जैसी कि आकाश में सूर्य चन्द्र जैसी प्रतिभाएँ छिन जाने पर हो सकती है । सौर मण्डल में सूर्य का, परमाणु में नाभिक का अपना स्थान है । उस मूल सत्ता के बिना बाहरी ढाँचा यथावत् खड़ा रहने पर भी वह निर्जीव ढकोसला मात्र रह जायगा ।

जन मानस का परिष्कार अपने युग की महती आवश्यकता है । धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण की विशाल काय योजना उसी के निमित्त बनाई गई है यह पराक्रम अपने ढर्रे पर अपने ढंग से निर्धारित योजना के अनुरूप चल रहा है । पर एक तरफ अभी भी जहाँ का तहाँ खड़ा है कि युग नेतृत्व कर सकने वाली प्रतिभाओं का निर्माण वैसे ही है । यह बड़ा काम है । हीरे की अपनी निजी विशिष्टता भी होनी चाहिए और जौहरी की सूझ—बूझ तथा खरादी की कुशलता भी, यह सारा समन्वय ही हीरे को उपयुक्त स्थान प्रदान कर सकता है । पारा अपने आप में एक रसायन है पर उसे मकरध्वज जैसी

जीवनमूरि बनाने वाली प्रक्रिया का भी मूल्यांकन करना होगा । पारस के संदर्भ में कहा जाता है कि उससे छूकर लोहे की शिलाएँ स्वर्ण राशि में बदल जाती हैं । चन्दन की प्रखरता समीपवर्ती औरों को सुवासित करतीं हैं । स्वाँति बूँदें सीप के कलेवर में मोती उत्पन्न करती हैं । चुम्बक अपने अनेकों सजातीयों को अपने निकट खींचता चला जाता है । इन उदाहरणों से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि प्रतिभाएँ अग्रिम पंक्ति में खड़ी होती हैं और सम्पर्क क्षेत्र को अपनी विशिष्टताओं से प्रभावित करती हैं ।

यहाँ यह चर्चा इस सम्बन्ध में की जा रही है कि युग सृजन के महान अभियान में दूरदर्शी निर्धारण, सुसन्तुलित क्रियान्वयन, उसके लिए जन सहयोग उपयुक्त साधन आदि का जितना महत्त्व है, लगभग उतना ही महत्व उन प्रतिभाओं का है जो लोक नायकों की भूमिका निभाने में अपनी उपयुक्तता सिद्ध कर सकें । अनुपयुक्त नेतृत्व से जितनी हानि होती है उसकी कल्पना मात्र से कलेजा दहलने लगता है । इन दिनों राजनैतिक क्षेत्र के नेतृत्व में जिस अनुपयुक्तता का साम्राज्य है उसे देखते हुए लगता है कि आजादी पा लेने पर भी प्रगति के दिन अभी दूर हैं । जिन देशों को यह सौभाग्य मिल गया है वे कुछ ही वर्षों में कहीं से कहीं जा पहुँचे और हम बगलें झाँक रहे हैं । यही बात धर्म क्षेत्र के सम्बन्ध में भी है । उसमें उपयुक्त नेतृत्व कर सकने वाली क्षमताएँ रहीं होती तो बुद्ध, गाँधी, समर्थ रामदास, विवेकानन्द, गुरु गोविन्द सिंह जैसे क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई न रहती । साहित्य क्षेत्र में रोम्या रोला, टालस्टाय, रस्किन, मार्क्स, रूसो, वर्नाडशॉ जैसे मात्र उद्देश्य के लिए लिखने वाली प्राणवन्त प्रतिभाओं की कमी न पड़ी होती तो लोक मानस को पतन और पराभव के इस कीचड़ में न सड़ना पड़ता ।

नेतृत्व करने के लिए लालायित तो असंख्यों हैं और उनमें मिलने वाले श्रेय को देखकर ललकते भी कितने ही हैं । घुसपैठ के लिए छद्म वेशियों की दुरभि संधियाँ भी देखते ही बनती है । इस विडम्बना की जन साधारण को भी धीरे-धीरे जानकारी मिल रही है और उन नेताओं की अभिनेताओं की श्रेणी में गणना होने लगी है । यह आस्था संकट इतना भयानक है कि

अगले दिनों लोक मानस को प्रभावित करने और नव सृजन जैसे आदर्शवादी कार्यों के लिए उपयुक्त प्रतिभाओं का वर्ग ही समाप्त हो जायगा । तब जन साधारण को समझाया और सिखाया कुछ भी जाता रहे, किसी आदर्शवाद के लिए त्याग बलिदान के लिए साहसिकता प्रदर्शित करने वालों का ढूँढ़ सकना कठिन हो जायगा । सार्वजनिक जीवन की इसे अपार क्षति कह सकते हैं ।

नवयुग के शुभारम्भ की इस पुण्य बेला में जिन औजार उपकरणों से सृजन प्रक्रिया आरम्भ करनी है, पहिले उन्हीं को देखना और सही करना होगा । जो औजार हाथ में हैं वे सही होने चाहिए । उन्हें बनाते समय भी यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उत्कृष्टता में किसी प्रकार की कमी न पड़ने पाये ।

सफलताएँ चाहे आर्थिक हों अथवा श्रेय सम्मान पाने की । वे अनायास ही किसी को नहीं मिलतीं । उनके लिए योग्यता बढ़ाने, पुरुषार्थ करने, साधन जुटाने और सहयोग पाने के कई आधार खड़े करने होते हैं । इन्हें आतंकवादी तरीकों से नहीं उगाया कमाया जा सकता है । इसके लिए आर्थिक प्रयास, एवं अटूट साहस की आवश्यकता होती है । ऐसा हर किसी से नहीं बन पड़ता । उसके लिए सुसंस्कारिता की आवश्यकता है । प्रतिभा इसी को कहते हैं । सफलता के लिए वही मूल्य चुकाना पड़ता है । जो असमर्थ होते हैं वे हाथ मलते रह जाते हैं ।

प्रगति एवं सुव्यवस्था के लिए साधनों की, शिक्षा की अनुकूलता की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी उत्कृष्ट दृष्टिकोण एवं सज्जनोचित व्यवहार पर आधारित सुसंस्कारिता की । जिनमें यह विशिष्टतायें होंगी उन्ही के लिए देश समाज, धर्म, संस्कृति आदि की कोई ठोस सेवा कर सकना सम्भव होता है ।

उत्कृष्ट व्यक्तित्व के धनी ही ऐसा कुछ कर पाते हैं जिसे चिरकाल तक कृतज्ञता पूर्वक स्मरण किया जाता रहे । समस्याओं के समाधान और सुखद सम्भावनाओं के निर्माण में भारी भरकम व्यक्तित्व ही आगे आते हैं । उन्हीं के पराक्रमों से वातावरण बनता है । हवा चलती और तूफान उठता है । बाढ़ रोकने, बाँध बाँधने, विग्रह को उलटने में उन्हीं की प्रतिभा काम

देती है । समुद्र छलाँगने और पर्वत उठाने जैसे महान कार्य ओछे व्यक्ति नहीं कर सकते, उसके लिए भी बजरंग बली जैसी ओजस्विता, तेजस्विता, मनस्विता होनी चाहिए यह विभूतियाँ कहीं बाहर से नहीं मिलतीं । हर किसी को भीतर से ही उगानी पड़ती हैं ।

यही है मानव जीवन का परम सौभाग्य, जिसे आत्म निर्माण एवं आत्म परिष्कार कहा जा सकता है । जिसने इस दिशा में जितनी प्रगति की समझना चाहिए कि उसने उतनी ही मात्रा में सुखद वर्तमान और उज्ज्वल भविष्य का सार सिद्धान्त और अमोघ वरदान प्राप्त कर लिया । यह उपलब्धियाँ कभी–कभी पूर्व संचित संस्कारों की पूँजी के रूप में किसी–किसी को अनायास ही उपलब्ध होतीं, उभर कर ऊपर आती देखी गई हैं । पर यह अपवाद है, क्रम विधान नहीं । इसी प्रकार किन्हीं सत्पात्रों को सत्प्रयोजनों के लिए कोई सिद्ध पुरुष अपना अधिकार भी हस्तान्तरित कर जाते हैं, यह भी अपवाद ही है । सामान्य क्रम स्वालम्बन, स्वउपार्जित ही है । आत्मसाधना ही इसका एक मात्र उपाय है । आत्मबल ही सबसे बड़ा बल है । धनबल, बुद्धिबल, बाहुबल के सहारे समृद्धि स्तर की सफलताएँ मिलती हैं । आत्मबल इन सबसे उपर है । उसके सहारे व्यक्तित्व बजनदार बनता है और इसी आधार पर मनुष्य की गरिमा का मूल्यांकन होता है ।

प्राचीन काल से यह भारत भूमि नर रत्नों की खदान रही है । इसकी स्थिति अनायास ही ऐसी नहीं बनी । इसके लिए तत्वज्ञानियों को आत्म निर्माण की गरिमा जन–जन को समझानी पड़ी है । और उन्हें उसकी उपलब्धि का मूल्य चुकाने के लिए साधना, पुरुषार्थ करने के लिए सहमत करना पड़ा है । गुरुकुलों, आरण्यकों में यही उपक्रम चलता था । लौह शानिक कारखाने कच्चे लोहे को पकाने और ढालने की विधि व्यवस्था बनाते हैं । फलतः उनमें प्रवेश करने वाला कच्चा लोहा जब पकने, गलने, ढलने की कष्ट साध्य प्रक्रिया को पूरा करके बाहर निकलता है तो उसका स्वरूप बहुमूल्य शस्त्रों एवं उपयोगी उपकरणों औजारों जैसा महत्व पूर्ण बना होता है ।

भवन कारखाने बनाने होते तो, धन के आधार पर मिल सकने वाले

उपकरण बनाये जुटाये जा सकते थे । वह सरल था । किन्तु अपना सृजन तो भावात्मक है । उसमें कोटि–कोटि मानवों के चिन्तन में उत्कृष्टता और आचरण में शालीनता का उत्पादन अभिवर्धन किया जाता है । सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों और सद्भावनाओं को लोक व्यवहार में सम्मिलित करना है । यह अत्यधिक कठिन काम है । इसके लिए ऐसी प्राणवान प्रतिभाओं की आवश्यकता पड़ेगी जो चरित्र और साहस से परिपूर्ण हों । सेवा और उदारता जिनमें कूट–कूट कर भरी हो ।

ब्रह्मवर्चस सत्रों का स्वरूप और साधकों का प्रवेश

युग परिवर्तन की इस पुण्य वेला में मान्यताओं, आकांक्षाओं एवं विधि व्यवस्थाओं का नये सिरे से औचित्य के आधार पर निर्धारण हो रहा है । ऐसी दशा में अध्यात्म तत्वदर्शन एवं प्रयोग विज्ञान का भी पर्यवेक्षण आवश्यक है । अवांछनीयताओं को जब हर क्षेत्र में निरस्त किया जा रहा हैं तो अध्यात्म के ढाँचे में ही विडम्बनाओं को क्यों घुसे रहने दिया जाय । नव निर्धारण और नव निर्माण की सुविस्तृत प्रक्रिया के अन्तर्गत अध्यात्म के दार्शनिक मूल्यों को भी उनके वास्तिविक रुप में ही प्रस्तुत करना पड़ेगा । उसके प्रयोग उपचार इस प्रकार के रखने होंगे जिनकी उपयोगिता नकद धर्म की तरह परखी जा सके । चिर अतीत में जिस कल्प वृक्ष का आश्रय लेकर कोटि–कोटि मानवों ने अपने को देवोपम बनाया उसको यदि उसी रूप में फिर अपनाया जाने लगे तो सत्परिणामों की दृष्टि से भी वैसी ही सुसम्पन्नता क्यों प्राप्त न होगी ?

ब्रह्मवर्चस् आरण्यक में साधना उपासना की विधि–व्यवस्था इसी दृष्टि से बनाई गई है कि वह पाठशाला, व्यायामशाला, उद्योगशाला की तरह अपने सत्परिणाम असंदिग्ध रूप से प्रस्तुत कर सके । उसे आत्म साधना एवं जीवन साधना के तत्त्व दर्शन पर आधारित रखा गया है । आत्म परिष्कार एवं आत्म विकास उसका उद्देश्य है । इस दिशा में जिसकी जितनी प्रगति होगी वह उतनी ही मात्रा में सुसंस्कृत, समर्थ एवं सुयोग्य दृष्टिगोचर होने लगेगा । सर्व विदित है कि उत्कृष्टता अन्तः क्षेत्र में ही उगती और बढ़ती है । उच्चस्तरीय

दृष्टिकोण और समर्थ पुरुषार्थ ही मिलकर मानवी प्रगति एवं प्रतिमा को जन्म देते हैं । यह चुम्बकत्व जिनके पास जितनी अधिक मात्रा में है वह उसी अनुपात में अपने कार्यों में विशिष्टता का समावेश किये रहता है । उसके व्यवहार में उतनी ही शालीनता भरी रहती है । यही विभूतियाँ हैं जो सामान्य को आसमान्य बनाती हैं । प्रगति के उच्च शिखर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करती हैं ।

अध्यात्म के सिद्धान्त एवं प्रयोगों का वास्तविक रूप क्या है और उसके सहारे सर्वतोमुखी प्रगति का लाभ कैसे लिया जा सकता है उसी का प्रत्यक्ष प्रयोग ब्रह्मवर्चस् साधना के अन्तर्गत करवाया जा रहा है ।

आस्था का परिमार्जन इस उपासना पद्धति का मूलभूत उद्देश्य है । शरीर पर मन का और मन पर अन्तःकरण का आधिपत्य रहता है । अन्तःकरण में बनी हुई आस्थाएँ ही मनुष्य के मस्तिष्क एवं शरीर को अपनी अभिरुचि के अनुरूप घसीटे–घसीटे फिरती हैं । व्यक्तित्व का वास्तविक परिष्कार आस्थाओं की गहराई संजोकर रखने वाले अन्तराल में आवश्यक परिवर्तन करने से ही संभव हो सकता है । यह कार्य कठिन है । शरीर को आहार–विहार एवं औषध उपचार से सबल बनाया जा सकता है । व्यवहार सम्पर्क से कुशलता एवं प्रवीणता उपार्जित की जा सकती है । किन्तु आस्थाओं का ध्रुवकेन्द्र तथा आकांक्षाओं का उद्‌गम अन्तःकरण की जिस गहराई में पाया जाता है उस तक पहुँचने और आवश्यक हलचल उत्पन्न करने के लिए अध्यात्म विज्ञान के प्रयोग ही सफल हो सकते हैं । उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों के निर्माण में जितना योगदान ब्रह्मविद्या के तत्व दर्शन का तथा साधना के प्रयोग उपचार का हो सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं । नवयुग का नेतृत्व कर सकने वाली प्रतिभाओं का उत्पादन अध्यात्म अवलम्बन के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से सम्भव नहीं हो सकता ।

ऐसे महान कार्य स्भावतः समय साध्य होते हैं । विद्वान और पहलवान बनने में, इंजीनियर डॉक्टर होने में कितना समय लग जाता है, कितना श्रमसाधन एवं मनोयोग लगाना पड़ता है, यह सर्व–विदित है । आत्म परिष्कार की महान उपलब्धि उससे कम नहीं अधिक मूल्य देकर ही खरीदी

जा सकती है । प्राचीन काल में छात्रों को गुरुकुलों में तथा प्रोढ़ों को आरण्यकों में चिरकाल तक व्यक्तित्व को विकसित करने वाली शिक्षा प्राप्त करनी होती थी । आज उसकी आवश्यकता और भी अधिक है । प्राचीन काल में दुष्टता, भ्रष्टता का इतना दौर नहीं था जितना आज है इसलिए उन दिनों साधकों को मलीनताओं से विरत करने में अधिक श्रम-समय नहीं लगता था । साधना सुसंस्कारों के संवर्धन की ही करनी पड़ती थी । आज की स्थिति में दुहरा मोर्चा सम्हालना पड़ता है । दुष्प्रवृत्तियों को छुड़ाना आज का अतिरिक्त श्रम है । विकास की दिशा में बढ़ सकना इन भव बंधनों की लौह श्रंखला ढीली होने पर ही संभव हो सकता है । ऐसी दशा में आवश्यकता इस बात की है कि साधना अधिक समय तक अधिक संकल्प पूर्वक की जाय उसमें गुरुकुलों तथा आरण्यकों से भी अधिक समय तक संलग्न रहने का अवसर निकाला जाय, किन्तु आज की स्थिति में ऐसा नहीं दीखता । हर व्यक्ति अपनी भौतिक समस्याओं और व्यवस्थाओं में इतना अधिक जकड़ा है कि उसका समय तथा श्रम अधिक समय तक उच्चस्तरीय प्रयोजनों में लग सकना कठिन ही दीखता है । वस्तु स्थिति को समझते हुए ब्रह्मवर्चस् साधना का न्यूनतम एक महीना रखा गया है । वैसे जिन्हें अधिक सुविधा हो और उनका रोका जाना उपयुक्त भी हो उन्हें अधिक समय तक ठहरने और अधिक लाभ उठाने की भी सुविधा मिल सकती है । साधारणतया एक महीने का ही प्रयोगात्मक शिक्षण बनाया गया है ।

इतनी न्यून अवधि का एक कारण तो यही है कि इन दिनों खर्चीला जीवन, पारिवारिक असहयोग, लिप्साओं में अधिक आकर्षण, अनास्था भरा वातावरण जैसे अनेक कारणों से लोग अत्यधिक व्यस्त पाये जाते हैं । अब जीवन क्रम सरल नहीं रहा, आंतरिक दुर्बलताएँ और बाह्य समस्याएँ दोनों मिलकर मनुष्य को इतना विक्षुब्ध किये रहती हैं कि दैनिक समस्याओं से निपटने के अतिरिक्त आत्मबल सम्पादन जैसे परोक्ष लाभ वाले कार्य में न रुचि रह जाती है और न अवकाश की स्थिति । घर का माया मोह भी इन दिनों पूर्वकाल की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है, साधुओं के फेर में पड़ने से सामान्य सद्गृहस्थ की कैसी दुर्गति होती है इसे सभी जानते हैं । ऐसी

दशा में घर परिवार के लोग अपने प्रियजनों को साधना के फेर में पड़ने से रोकें तो वह भी समय को देखते हुए ठीक ही है, ऐसे-ऐसे अनेक कारण हैं जिन्हें देखते हुए इस ब्रह्मवर्चस जैसे उपयोगी प्रशिक्षण के लिए अधिक समय तक घर से दूर आजीविका से विमुख रहना कठिन ही समझा जा सकता है । जिसमें आने-जाने, खाने-पीने का खर्च भी बढ़ता है । आर्थिक कठिनाइयाँ भी ऐसे उत्साह को ठण्डा करती हैं । यह वैयक्तिक कठिनाइयों का प्रसंग हुआ जिसके कारण अधिक समय ठहर सकना, इच्छुकों, उत्सुकों एवं आस्थावानों के लिए भी कठिन पड़ता है ।

दूसरा कारण ब्रह्मवर्चस आरण्यक में स्थान तथा उपयुक्त प्रशिक्षण के आवश्यक साधनों की भी उतनी बहुलता नहीं है जिसके आधार पर अधिक संख्या में अधिक साधकों को अधिक दिनों तक ठहराया जाना संभव हो सके । मिशन के सदस्यों की युग निर्माण परिवार के परिजनों की संख्या इतनी अधिक है कि प्रशिक्षण की सुविधा देनी हो तो अधिक समय न ठहरने देने की बात ही सोचनी पड़ती है । अधिक समय का पाठ्यक्रम रखा जाय तो उससे हर वर्ष मुटठी भर लोग ही लाभान्वित हो सकेंगे । अन्य सभी को निराश रहना पड़ेगा । इससे अधिकांश सत्पात्रों को ही इस सुअवसर से वंचित नहीं रहना पड़ेगा वरन् एक और भी बड़ी हानि यह भी होगी कि युग शिल्पियों की, लोकनायकों की बड़ी संख्या में जो सामयिक आवश्यकता पड़ रही हैं उसका पूरा हो सकना भी कठिन हो जायगा । इन सभी तत्वों पर विचार करते हुए यह निर्धारण करना पड़ता है कि प्रशिक्षण क्रम एक महीने का ही रखा जाय । इस छोटी सी अवधि का इस प्रकार व्यस्त कार्य क्रम बनाया जाय, इसमें सार रूप से वह सब कुछ सिखाया जा सके जिसकी सृजन शिल्पियों को अपने व्यक्तित्वों को परिष्कृत करने तथा नवनिर्माण का कौशल उपार्जित करने की प्रारम्भिक आवश्यकता पूरी करने का अवसर मिल सके । इतने पर भी यह कठोर प्रतिबन्ध नहीं है कि एक महीने से अधिक समय के लिए किसी को ठहरने ही नहीं दिया जायगा । जिनकी मनः स्थिति, परिस्थिति एवं उपयुक्तता को देखते हुए अधिक दिन ठहरना आवश्यक होगा उनके लिए वैसी विशेष व्यवस्था भी बना दी जायगी ।

प्रशिक्षण तीन भागों में विभक्त किया गया है । (१) साधनात्मक-तपश्चर्यापरक (२) दार्शनिक-आत्म विज्ञान परक (३) सृजनात्मक-लोक साधना से संबंधित । साधकों की दिन-चर्या का निर्धारण इस प्रकार होगा । जिसमें शरीर निर्वाह का शौच, स्नान, भोजन, विश्राम आदि के नित्य कर्मो से बना हुआ सारा समय इन निर्धारित प्रयोजनों में ही लगा रहे । मटरगस्ती, आवारागर्दी, मनोरञ्जन इधर-उधर भटकने, पर्यटन-भ्रमण करने, आलस प्रमाद में समय गँवाने की छूट किसी को भी नहीं मिलेगी । समय का एक-एक क्षण व्यस्त रखा जायगा । आशा है कि आलसी प्रमादी, अवज्ञाकारी लोग इस व्यस्त साधना क्रम में आने का साहस ही न करेंगे । यदि कुछ घुस पड़े तो उन्हें अनुशासनहीनता फैलाने और गलत उदाहरण बनाने की सुविधा न मिल सकेगी । उन्हें बीच में से ही वापस जाने के लिए कह दिया जायगा । इससे कम कड़ाई अपनाये बिना साधना की सार्थकता संभव नहीं हो सकेगी । इस प्रकार समय का अपव्यय रोक देने पर शिक्षार्थी बँधे हुए समय का मुस्तैदी के साथ परिपालन करने पर निर्धारित तीनों विषयों में उतनी प्रगति कर सकेंगे जितनी कि इस प्रशिक्षण में सम्मिलित होने वालों से आशा की गई है ।

निश्चय ही प्रशिक्षण क्रम अत्यधिक महत्वपूर्ण है । उसमें साधक के व्यक्तित्व का विकास और युग साधना का उपयुक्त कौशल, दोनों ही महान उपलब्धियाँ सम्मिलित हैं जिससे शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों ही धन्य बनते हैं । युग की सबसे बड़ी माँग नव सृजन के लिए उपयुक्त प्रतिभाओं की आवश्यकता की पूर्ति की व्यवस्था बनाना, इन सत्रों की सफलता पर निर्भर है । महत्व को समझा जाय । जागृत इसकी उपयोगिता समझें भी और निजी कामों की क्षति को सहन करते हुए भी इन सत्रों में आतुरतापूर्वक सम्मिकलत होने का प्रयत्न करें । संख्या की दृष्टि से आवेदकों की बहुलता रहना निश्चित है । ऐसी दशा में स्वीकृति देने में क्या दृष्टिकोण अपनाया जाय, क्या नीति रखी जाय इसका निर्धारण होना आवश्यक है । इस सम्बन्ध में यह नियम बनाया गया है कि जुलाई से लेकर जून तक के बारह महीनों में हर महीने ५० साधक लिए जाँय । पूरे वर्ष के लिए छैः सौ शिक्षार्थियों के नाम पंजीकृत कर लिये जाँय ।उनके स्थान सुरक्षित कर दिये जाँय, साथ ही कुछ

नाम प्रतीक्षा सूची में भी सम्मिलित रखे जाँय । उन्हें उस स्थिति में स्थान मिल सकेगा जब कि कोई पंजीकृत शिक्षार्थी आ सकने की असमर्थता व्यक्त करेगा । ऐसी सूचनाएँ न्यूनतम एक महीने पहले देने का नियम बनाया गया है । प्रतीक्षा सूची वालों को इस प्रकार स्थान खाली होने पर वह सीट हस्तान्तरित कर दी जायगी ।

प्रथम वर्ष के छैः सौ साधकों को पंजीकृत करने के लिए की जाने वाली छँटनी में यह ध्यान रखा जायगा कि वे वरिष्ठ, कनिष्ठ एवं समयदानी परिव्राजकों में से छाँटे जाँय, क्योंकि युग परिवर्तन में महत्पूर्ण योगदान इसी स्तर के परिजनों का रहेगा । जो मात्र अपने ही लाभ की बात सोचते हैं जिन्हें स्वर्ग, मुक्ति सिद्धि, शान्ति आदि में ही रुचि है, जिनके सांसारिक और आध्यात्मिक प्रयास मात्र व्यक्तिगत स्वार्थपरता की परिधि में ही सीमाबद्ध है, उन्हें पीछे कभी आने वालों की फाइल में सुरक्षित रखा जायगा । युग सृजन में उदार परमार्थ परायणता की ही आवश्यकता है । सेठ भी संत की व्यक्तिवादी मनोवृत्ति अपनाकर कोई मनुष्य समर्थ बन सकता है पर उसका यह वैभव ईश्वर धर्म समाज सस्कृति की दृष्टि से कानी–कौड़ी जैसी मूल्य का भी नहीं है । आत्म साधना में आत्म परिष्कार की तपश्चर्या और उदार लोक साधना में सघन आस्था होनी चाहिए । यह तथ्य जिनमें संतोषजनक मात्रा में पाये जायेंगे उन्हें प्राथमिकता दी जायगी । प्रथम वर्ष के लिए यही नीति रहेगी । उसी कसौटी पर कसकर ब्रह्मवर्चस् सत्रों में हर महीने पचास की संख्या में आने वाले कुल मिलाकर छैः सौ शिक्षार्थियों का स्थान सुरक्षित किया जायगा ।

त्रिविध प्रशिक्षण की त्रिवेणी

आहार के तीन वर्ग हैं–(१) अन्न (२) जल (३) वायु, इन तीनों के सहारे ही मनुष्य जीवित रहता है । पौधे को बढ़ने के लिए (१) भूमि (२) खाद (३) पानी तीनों की आवश्यकता पड़ती है । व्यापार के लिए (१) पूँजी (२) उत्पादन (३) विक्रय तीनों साधन जुटाने होते हैं । आत्मिक प्रगति भी एक उच्चस्तरीय उत्पादन एवं गरिमा सम्पन्न व्यवसाय है । इसके लिए तीन साधन चाहिए (१) भक्तियोग (२) ज्ञानयोग (३) कर्मयोग । इन तीनों की समन्वित व्यवस्था करने पर ही (१) कारण शरीर (२) सूक्ष्म शरीर

(३) स्थूल शरीर को परिष्कृत एवं प्रखर बनाने का अवसर मिलता है । उपरोक्त तीनों साधनाओं में से एक भी ऐसा नहीं है जिसे अकेले के बलबूते जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हो सके । इनमें से एक भी पक्ष ऐसा नहीं है जिसे छोड़कर प्रगति का रथ एक कदम आगे बढ़ सके धुरी और दो पहिए मिलने से ही उसमें गतिशीलता उत्पन्न होती है ।

ब्रह्मवर्चस् सत्रों की प्रशिक्षण पद्धति में उपरोक्त तीनों तत्वों का समावेश करके उसे साधना क्षेत्र की त्रिवेणी के समतुल्य बनाने का प्रयत्न किया गया है । उसकी समग्रता यह विश्वास दिलाती है कि साधनों को सर्वांगपूर्ण बनाया जा रहा है तो उसका प्रतिफल भी सुनियोजित सत्प्रयत्नों की तरह संतोष जनक ही होना चाहिए ।

एक महीने की साधना में भी उस रूप रेखा का समावेश है जिसे अपनाकर अधिक समय टिकने वाले अधिक प्रगति कर सकते हैं । जिन्हें उतने ही समय रुकना है वे अभ्यास कराये गये आधारों को अपनाकर आत्मिक प्रगति के राज मार्ग पर अनवरत गति से चलते हुए परम लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं ।

प्रशिक्षण के तीन पक्ष हैं (१) साधना (२) ब्रह्मविद्या (३) लोक मंगल । नित्य कर्म से बंधा हुआ प्रायः सारा ही समय क्रमबद्ध रूप से इन्हीं तीन अभ्यासों में नियोजित रखा जायगा । साधना में गायत्री और सावित्री दोनों की उपासना सम्मिलित है । ब्रह्मवर्चस शब्द का तात्पर्य ही यह है कि उसमें परिष्कार के लिए योगाभ्यास का और प्रखरता के लिए तपश्चर्या का समावेश किया जाना है । उसमें दक्षिण मार्गी गायत्री की ध्यान धारणा और वाममार्गी सावित्री की कुण्डलनी साधना का समन्वय रहना है । सूर्योदय से पूर्व गायत्री साधना का और सूर्यास्त के उपरान्त कुण्डलनी जागरण का विधि विधान हर साधक की स्थिति और आवश्यकता को ध्यान में रखकर कराया जायगा । इस सन्दर्भ में किसे क्या सिखाया जायगा, इनका पूर्व निर्धारण नहीं हो सकता । हर व्यक्ति की स्थिति और आवश्यकता भिन्न होती है । इसलिए उच्च स्तरीय साधना का निर्णय उनका तात्विक निरीक्षण करके ही किया जा सकता है ।

सामान्यतया प्रातःकालीन गायत्री उपासना में वे अभ्यास कराये जाते हैं जो ब्रह्मलोक, ब्रह्मरन्ध्र, आज्ञाचक्र, सहस्रारचक्र, तालु, मूर्धा श्वास-प्रश्वास के केन्द्र बिन्दु मानकर बने हैं और जिनका प्रभाव शीर्ष भाग में सन्निहित ब्रह्म ज्योति को, आत्म चेतना को प्रभावित करता है । शीर्ष को ब्रह्मलोक माना गया है । इसमें दिव्य चेतना का अधिपत्य है । यही गायत्री लोक है । गायत्री साधना द्वारा जो कुछ पाया जाता है वह सारा विभूति वैभव इसी परिधि में उपार्जित किया जाता है ।

सायंकालीन साधना में कुण्डलनी जागरण की क्रिया प्रतिक्रियाओं का समुच्चय है । जननेन्द्रिय मूल में निवास करने वाली प्राण ऊर्जा का केन्द्र मूलाधार चक्र माना गया है । उसी के योगाग्नि, कालाग्नि, जीवनी शक्ति, काली, कुण्डलनी आदि अनेक नाम हैं । नाभिचक्र से लेकर जननेन्द्रिय मूल और कटि प्रदेश का सारा क्षेत्र इसी महाशक्ति को ज्वलन्त करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है । इस क्षेत्र तक साधक की संकल्प शक्ति को पहुँचाने का एक मात्र मार्ग मेरुदण्ड है । उसी को साधना विज्ञान में देवयान कहा गया है । इसमें प्रवाहित होने वाली तीन दिव्य धाराएँ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कही जाती हैं । इन्ही का संगम अध्यात्म क्षेत्र का त्रिवेणी संगम कहा गया है ।

कुण्डलनी जागरण की क्रिया प्रक्रिया को समुद्र मन्थन के समतुल्य बताया गया है । समुद्र मन्थन से १४ दिव्य रत्न निकलने की पौराणिक गाथा का संकेत यही है कि इस कुण्डलनी क्षेत्र का मन्थन करने वाले अपने स्तर के अनुरूप उपयोगी प्रतिफल उपलब्ध कर सकते हैं । मूलाधार की साधना का विशद विज्ञान तन्त्र के अन्तर्गत आता है । सहस्रार की क्षमताओं से लाभान्वित होने की प्रक्रिया योग कहलाती है । योग से ज्ञान की और तन्त्र से विज्ञान की उपलब्धि होती है । एक को ऋद्धियों का औरं दूसरे को सिद्धियों का उद्‌गम माना गया है । तन्त्र का अभ्यास काल रात्रि है और योग के लिए ब्रह्ममुहूर्त सर्वोत्तम माना गया है । यों इन्हें सुविधानुसार अन्य समयों में भी किया जा सकता है ।

सामान्य तथा मध्यवर्ती स्तर के साधकों को प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में एक घंटा योगाभ्यास परक गायत्री साधना कराई जाती है । रात्रि को तंत्र प्रक्रिया के

अन्तर्गत कुण्डलनी जागरण के वे अभ्यास कराये जाते हैं जिन्हें बंध, मुद्रा और प्राण संधान की त्रिविध तंत्र प्रक्रियाओं का आधार अंग माना जाता है । यह विधान भी साधक की स्थिति के अनुरूप ही बताये जाते हैं । एक महीने के समय में सब कुछ हल्का ही हल्का रखा गया है । साधना विज्ञान की विशालता और गरिमा को देखते हुए इसे बाल कक्षा जितना ही कहा जा सकता है । अभ्यस्त लोगों के लिए हर नया प्रयोग भारी पड़ता है । ध्यान योग में थोड़ा अधिक गहरा उतरने लगा जाय तो सिर भारी होने लगता है । इस कठिनाई का पूरा-२ ध्यान रखा गया है और पाठ्यक्रम इतना सरल रखा गया है कि उसे बिना किसी प्रकार का खतरा उठाये कोई नया अभ्यासी भी सरलता पूर्वक सम्पन्न कर सके । व्यायमशालाओं और पाठशालाओं में नवागन्तुकों को साहस और उत्साह बढ़ाने की दृष्टि से जो कुछ सिखाया कराया जाता है वह सरलतम ही होता है । अधिक बड़ा पराक्रम एवं दुस्साहस करने की स्थिति तो तब आती है जब अभ्यास में परिपक्वता और प्रौढ़ता दृष्टिगोचर होने लगे ।

प्रातः सायं साधना के दोनों पक्ष पूरे होते रहेंगे । सवेरे से लेकर मध्यान्ह तक का समय ब्रह्म विद्या के अवगाहन के लिए हैं और मध्यान्ह से सायंकाल तक लोक शिक्षण में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए । मध्यान्ह तक स्वाध्याय और सत्संग का क्रम चलेगा । मध्यान्होत्तर भाषण कला का अभ्यास एवं युग परिवर्तन के लिए आवश्यक रचनात्मक प्रवृत्तियों का क्रियान्वयन करने का व्यवहारिक ज्ञान कराया जायगा ।

एक महीने की अवधि में ब्रह्मवर्चस के प्रशिक्षण के सूत्र संचालक द्वारा प्रतिदिन एक प्रवचन किया जाता रहेगा । अध्यात्म तत्वज्ञान और साधना-विज्ञान की जीवन धारा में घुला देने का उपाय सुझाया जाता रहेगा । और बताया जायेगा कि जीवन साधना की प्रक्रिया का शुभ आरम्भ कितनी सरलता से कितने छोटे रूप में किया जा सकता है और उसे क्रमशः बढ़ाते हुए किस प्रकार सिद्धावस्था तक पहुँचा जा सकता है । साधक के सम्मुख प्रस्तुत कठिनाइयों के समाधान के लिए आवश्यक विचार विनिमय एवं परामर्श की प्रक्रिया भी इसी के साथ जुड़ी रहेगी ।

स्वाध्याय के लिए कुछ निर्धारित साहित्य उस अवधि में पढ़ लेने के लिए कहा जायेगा । इस अध्ययन क्रम में वे चुनी हुई पुस्तकें ही रखी गई हैं जो साधक की प्रगति में सहायक हो सकें और उसके सामने प्रस्तुत अवरोधों का निराकरण कर सकें । सामान्य प्रवचन तो सभी के लिए एक होगा पर परामर्श परक विचार विनिमय समय-समय पर साधक की स्थिति के अनुरूप ही होता रहेगा । इसी प्रकार कुछ पुस्तकें सभी के लिए समान रूप से स्वाध्याय में सम्मिलित रहेंगी पर सामान्यतया अधिक समय तक वे पुस्तकें पढ़ने का निर्देश दिया जायेगा जो साधक की मनः स्थिति और परिस्थिति को देखते हुए उपयुक्त आवश्यक समझी जायेंगी । स्वाध्याय साहित्य का निर्धारण भी ब्रह्मवर्चस प्रशिक्षण के सूत्र-संचालक करेंगे । यह स्वाध्याय भी साधना की ही तरह प्रेरणाप्रद एवं भावी जीवन के लिए मार्गदर्शक का काम कर सके इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जायेगा ।

मध्यान्होत्तर की कक्षा में युग शिल्पयों के लिए आवश्यक योग्यताओं को विकसित करने तथा कार्य क्षेत्र में जन सम्पर्क में आशाजनक सफलता उपलब्ध करने के लिए आवश्यक उपाय सुझाये जायेंगे । जो आवश्यक हैं उसका क्रियात्मक अभ्यास भी कराया जायगा । इन योग्यताओं में भाषण कला और संभाषण कुशलता को प्रधान माना जाता है ।

युग परिवर्तन के लिए जन मानस का परिष्कार करना होगा ज्ञान यज्ञ का युग अनुष्ठान प्रतीक्षित विचार क्रान्ति अभियान के रूप में गतिशील हो रहा है । इसमें जागृत आत्माओं को प्रस्तुत लोक मानस को जगाने में संलग्न होना होगा । यह कार्य सामूहिक रूप में प्रवचनों द्वारा सम्पन्न करना होता है । बड़े जन सम्मेलनों आयोजनों में भाषण करने होते हैं और थोड़े लोगों के साथ ज्ञान गोष्ठियों में विचार विनिमय परामर्श करना होता है । यह दोनों ही कार्य वाणी के प्रयोग उपयोग के द्वारा सम्पन्न होते हैं । कुशल वाणी ही अपने प्रभाव से अभीष्ट प्रयोजन पूरा कर सकती है । जिसे दूसरों के सम्मुख अपने विचार व्यक्त करने में झिझक लगती है उसके लिए युग सृजन में महत्वपूर्ण कर सकना कठिन पड़ेगा । साहित्य का प्रचार करने के लिए भी तो किसी न किसी रूप में वाणी का ही प्रयोग करना होता है । झोला पुस्तकालय

चल पुस्तकालय आदि को गतिशील बनाने में वाणी ही काम आती है ।

ब्रह्मवर्चस सत्र में समूह मंच पर भाषण देने और व्यक्तिगत सम्पर्क में प्रभावी संभाषण करने की कला का नियमित अभ्यास मध्यान्तर प्रशिक्षण में कराया जाता है । इसके अतिरिक्त यज्ञ कृत्य सहित पर्व संस्कार आदि के अवसर पर सम्पन्न होने वाले धार्मिक कर्मकाण्डों को कराने का अभ्यास भी साथ–साथ चलता रहेगा । युग निर्माण अभियान में धर्म मंच से लोक शिक्षण की प्रक्रिया को रचनात्मक कार्यक्रम का अंग बनाया गया है । समय–समय पर इस प्रयोजन के लिए होने वाले आयोजनों में किसी न किसी रूप में यज्ञ कृत्य एवं अन्य पूजा–विधानों का समावेश रहता है । युग शिल्पियों को उसमें प्रवीण होना ही चाहिए । जन्मदिन, संस्कार, पर्व, नवरात्रि, आयोजन, वार्षिकोत्सव आदि सभी छोटे बड़े सम्मेलनों में यज्ञ कृत्य होते हैं उन विधानों की व्याख्या करते हुए स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप लोक शिक्षण क्रम चलते हैं । इसलिए जहाँ भाषण संभाषण शैली की कुशलता आवश्यक है वहाँ साथ–साथ जुड़े रहने वाले धर्मानुष्ठान को सम्पन्न कर सकने की प्रवीणता भी रहनी चाहिए । ब्रह्मवर्चस को मध्यान्तर शिक्षण में इन दोनों का अभ्यास कराया जाता है ।

सफल जन सम्पर्क, रचनात्मक क्रिया–कलापों का सूत्र संचालन, समायिक समस्याओं के समाधान का सुनिश्चित दृष्टिकोण, सृजन शिल्पियों का, प्रतिभावान व्यक्तित्वों का सहयोग सम्पादन, अवरोधों के निराकरण का दूरदर्शी व्यवहार कौशल जैसे अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिनसे हर लोक सेवी को परिचित होना चाहिए और इतनी पूर्व तैयारी रहनी चाहिए कि किसी भी उतार चढ़ाव पर डगमगाने की आवश्यकता न पड़े । यह कुशलता ब्रह्मवर्चस साधकों को तीसरे पहर के प्रशिक्षण में इसलिए उपलब्ध कराई जाती है कि यह कृत्य भी भावी जीवन में उनकी सामान्य दिनचर्या का ही एक अंग बन कर रहेगा, आत्मिक प्रगति के सेवा धर्म को अपनाये बिना प्राचीन काल के धर्म परायणों का भी काम न चला था और न भविष्य में किसी धर्म प्रेमी को उससे विरत रहने की इच्छा होगी । सिद्धि या मुक्ति की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा भी सेठ या शासक बनने जैसी क्षुद्र ही है । ब्रह्मवर्चस् के साधक उदात्त भूमिका में विकसित होंगे तो उन्हें युग साधना के क्षेत्र में अपनी

गतिविधियों को किसी न किसी रूप में नियोजित करना ही होगा । शरीर यात्रा, परिवार, संरक्षण, आजीविका प्रबंध, लोक व्यवहार की तरह ही ब्रह्मवर्चस् के छात्र युग साधना को भी अपने सामान्य जीवन क्रम में सम्मिलित करेंगे । ऐसी दशा में उस सन्दर्भ को आवश्यक ज्ञान अनुभव और अभ्यास रहना ही चाहिए । तीसरे प्रहर की शिक्षण व्यवस्था में इन सभी तत्वों का समावेश रखा गया है जिनके आधार पर ब्रह्मवर्चस साधना सत्र में शिक्षार्थी अपने भावी जीवन क्रम में एक महत्वपूर्ण अंग का सफलता पूर्वक सुसंचालन कर सकें ।

हर अंग्रेजी महीने में पहली से तीस तारीख तक चलने वाले एक–एक महीने वाले ब्रह्मवर्चस सत्रों की सुनिश्चित अभिनव श्रृंखला १ जुलाई से आरम्भ होने जा रही है इसके बाद वह लगातार चलती रहेगी । इसकी विशेषता यह है कि हर शिक्षार्थी की परिस्थिति का अलग से विश्लेषण किया जायेगा और तदनुरूप उनके लिए साधना एवं शिक्षण का क्रम निर्धारित किया जायेगा । तपश्चर्या में आहार की सात्विकता और मात्रा पर विशेष ध्यान दिया जायगा । उस पर जिसके लिए जिस प्रकार, जितना नियंत्रण संभव होगा, तद्नुरूप उसे परामर्श दिया जायेगा । मन की सात्विकता स्थिरता के लिए अन्न आहार तप का कोई न कोई स्वरूप हर साधक को अपनाना होगा । इन विशेषताओं के कारण इन सत्रों को विशेष आधार पर खड़ा किया गया और विशेष परिणाम उत्पन्न करने वाला ही कहा जा सकता है । त्रिपदा गायत्री की यह त्रिवेणी साधना युग साधना के अनुरूप होने के कारण नितान्त सामयिक एवं अतीव महत्वपूर्ण समझी जा सकती है ।

गायत्री और सावित्री की समन्वित साधना–ब्रह्मवर्चस

इस विराट विश्व का जो भी स्वरूप परिलक्षित होता है उसमें मूलतः दो तत्वों का अनिवार्य संयोग है । एक है चेतना, और दूसरा है पदार्थ । इसी सत्य को शास्त्रकारों ने ब्रह्म और प्रकृति के रूप में समझाने का प्रयास किया है । शिव और शक्ति, ईश्वर और माया आदि के नामों से भी इसी तथ्य की व्याख्या की गई । राम–सीता, कृष्ण–राधिका के विग्रह के

तात्विक विवेचना में भी इसी सिद्धान्त की झलक पाई जाती है ।

यह दोनों तत्व अपने-अपने क्रम से क्रियाशील रहते हैं । दोनों के अपने-अपने नियम हैं, सिद्धान्त हैं । चेतना से सम्बन्धित बोध जिससे होता है उसे ज्ञान तथा पदार्थ का बोध जिससे होता है उसे विज्ञान कहते हैं ।

जड़ चेतन का ज्ञान विज्ञान का विस्तार गायत्री मन्त्र के आलोक में भली प्रकार देखा समझा जा सकता है । ज्ञान और विज्ञान की उभय पक्षीय दिव्य धाराएँ गायत्री और सावित्री के रूप में लोक व्यवहार में आती हैं । इनका अबलम्बन यदि ठीक तरह किया जा सके तो मनुष्य देवत्व के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है । आत्म कल्याण और लोक कल्याण के दोनों ही पक्ष स्वार्थ-परमार्थ इससे ठीक तरह सध सकते हैं ।

गायत्री को ही ब्रह्मविद्या कहा गया है । ऋतम्भरा प्रज्ञा उसी का नाम है । जीवन, मुक्ति, भाव, समाधि का आनन्द उसी से मिलता है । योग और तप द्वारा उसी राजहंस, परमहंस जैसी मनोभूमि को प्राप्त किया जाता है । यही जीवन का परम लक्ष्य है । इसी की पूर्णता को मुक्ति कहते हैं । आत्मा और परमात्मा का मध्यवर्ती मिलन संयोग इसी महान उपलब्धि का नाम है । इसी को चरमोत्कर्ष कहते हैं । परमानन्द की प्राप्ति इसी सोपान तक पहुँचाने वालों को उपलब्ध होती है ।

भौतिक प्रयोजनों के लिए की गई साधना को सावित्री उपासना कहा जाता है । उसका प्रयोगात्मक रूप कुण्डलनी है । इसके साधना विधानों को तन्त्र विज्ञान के अन्तर्गत लिया जाता है । योग विज्ञान विशुद्ध रूप से भाव विज्ञान है । उसके समस्त क्रिया-कलाप आत्म शोधन से संचालित हैं । भाव पक्ष ही उसमें प्रधान है । यम नियम के द्वारा चरित्र चिन्तन का और आसन प्राणायाम द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण का उपक्रम किया जाता है । इसके बाद उच्चस्तरीय उत्तरार्ध प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि का आता है । यह चारों ही विधान विशेष रूप से चिन्तन परक, ध्यान परक हैं । इस संदर्भ की समस्त क्रियाएँ मानसिक होती हैं । धारणा ही उसमें प्रधान है । धियः तत्व का इस उपक्रम से क्रमिक अभिवर्धन होता है । गायत्री उपासना की परिधि यही है । सावित्री उपासना से प्राण ऊर्जा को उभारा जाता है और उसे

परिपुष्ट बनाकर इस योग्य बनाया जाता है कि भौतिक प्रयोजनों की पूर्ति में उसका समुचित लाभ लिया जा सके ।

सावित्री की कुण्डलनी साधना का केन्द्र विन्दु यही प्राण तत्व है । यह चेतना के साथ जुड़ा होने और प्रकृतितः ऊर्जा वर्ग का होने से आधा जड़ और आधा चेतन है । यों प्राण का प्रभाव एवं सम्बन्ध चेतना के साथ भी है । किन्तु वह मूलतः शरीर के अंग प्रत्यंगों में सन्निहित है । कोशिकाओं के मध्यवर्ती नाभिक से लेकर हृदय और मस्तिष्क में मुखर रहने वाले जीवन तत्व में उसी का दर्शन, अनुभव एवं मूल्यांकन किया जाता है । यह प्राण ऊर्जा मानवी काया में प्रचुर परिमाण में भरी पड़ी है । स्वभावतः वह प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है । आवश्यकता अनुभव करने वाले पुरुषार्थ पूर्वक उसे जगाते, उठाते हैं और उपयोग उपचार के द्वारा उच्चस्तरीय लाभ उठाते हैं । यह सारा प्रयोग उपचार कुण्डलनी साधना के अन्तर्गत आता है । सावित्री साधना यही है । तन्त्र विज्ञान इसी की विवेचना एवं प्रयोग प्रक्रिया का समग्र शास्त्र है ।

सावित्री साधना के लिए किये गये उपचार अभ्यासों में प्रधानता उनकी ही है जो प्राण शक्ति के जागरण, सम्बर्धन में योग दान देते हैं । प्राप्त ऊर्जा का उत्थान, उत्कर्ष एवं उन्नयन ही प्रकारान्तर से कुण्डलनी जागरण है । प्राण शक्ति को पाँच भागों में विभक्त किया गया है । उसे प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान नामों से जाना जाता है । उन्ही की प्रेरणा से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ काम करती हैं । शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श की पाँच तन्मात्रायें इन्ही पाँच प्राणों की इन्द्रियजन्य अनुभूतियाँ हैं । पाँच तत्वों को जड़ माना जाता है किन्तु उस जड़ता में भी अग्नि, जल, पृथ्वी, पवन एवं आकाश में जो गतिशीलता देखी जाती है, उसे प्राण प्रवाह की प्रेरणा ही कहना चाहिए । निरूपण कर्त्ताओं ने पाँच तत्वों को पाँच प्राणों का ही प्रत्यक्ष प्रतीक माना है । जड़ जगत पाँच तत्वों से और चेतन जगत पाँच प्राणों से बना माना जाता है । इस जगती के अधिष्ठाता पाँच देवता माने गये हैं । प्रकारान्तर से यह समस्त विवेचन पंचाधि प्राण शक्ति का ही है । सावित्री के पाँच मुख माने गये हैं । यह अलंकारिक स्थापना है । प्राणी

जगत में किसी भी जीवधारी के अनेक मुख नहीं होते । हाथ पैर ही अनेक हो सकते हैं । मुख अनेक होने पर तो किसी जीव धारी की विचित्र स्थिति हो सकती है, उसका निर्वाह क्रम ही अटपटा सकता है । देवताओं के अनेक मुखों का होना कोई यथार्थता नहीं, उनके साथ जुड़े हुए रहस्यों का इस अंग विविधता, वाहन, शस्त्र, उपकरण आदि के माध्यम से प्रतिपादन भर किया गया है । पहेली बुझौवल की शैली से जानने–जनाने का प्रयत्न किया गया है कि इन पाँच प्रतीकों के पीछे सूक्ष्म रहस्यों की अवधारणा क्या है ?सावित्री और कुण्डलनी शक्ति एक है । गायत्री और वेदमाता एक । गायत्री ज्ञान पक्ष है । सावित्री विज्ञान पक्ष । गायत्री साधना में धियः और धीमहि प्रधान हैं । उसमें विचारणा और भावना को प्रज्ञा और श्रद्धा को उभारा जाता है । इसलिए यह समस्त चिन्तन ब्रह्मविद्या के अन्तर्गत आता है । गायत्री ही ब्रह्मविद्या है । सावित्री इसी महा विज्ञान का कर्म पक्ष है । उसे व्यवहार साधना भी कह सकते हैं । यह तप प्रधान है । सविता का भर्ग इसका उत्पादन केन्द्र है । इसकी उपासना से प्राण ऊर्जा को प्रचण्ड बनाया जाता है । प्रसुप्ति को हटाकर जागृति में परिणत किया जाता है । इसी प्रयास को कुण्डलनी जागरण कहते हैं । कुण्डलनी जागरण और सावित्री साधना एक ही बात है ।

सावित्री से शक्ति प्राप्त होती है गायत्री से प्रज्ञा । दोनों के सम्मिश्रण से ही पूर्ण आत्मबल बनता है । एकांगी साधना अधूरी रहती है । बिजली के दोनों तार मिलने पर विद्युत प्रवाह गतिशील होता है । दो गैसें मिलने से पानी बनता है । नर और नारी का मिलन सन्तानोत्पादन के लिए आवश्यक है । गायत्री और सावित्री के संयुक्त समन्वय की आवश्यकता सदा से समझी जाती रही है । एकांगी बने रहने से अपूर्णता बनी रहती है । ज्ञान और कर्म का सम्मिश्रण ही उपलब्धियों का सृजन करता है । इनमें से कोई अकेला रहने पर अधूरा एवं अशक्त ही रहेगा । गायत्री ज्ञान है और सावित्री कर्म । गायत्री योग है और सावित्री तप । दोनों के मिलजाने से ज्ञान रूपी कृष्ण और कर्म रूपी अर्जुन का समन्वय होता है और महाभारत विजय का आधार बनता है ।

गायत्री को ब्रह्म कहा गया है और सावित्री को वर्चस् । दोनों का

समन्वय ही ब्रह्मवर्चस् है । उस समग्र क्षमता को प्राप्त करने के लिए साधना क्षेत्र में तत्वदर्शी प्रबल प्रयत्न करते रहते हैं । अतिवादी एकांगी होते हैं । वे समन्वय की आवश्यकता नहीं समझते और एक पक्षीय हठवाद पर अड़े रहते हैं । फलतः उनकी सफलता भी अधूरी और एक पक्षीय बनी रहती है ।

ब्रह्मविद्या और ब्रह्मतेज का समन्वय ही ब्रह्मवर्चस् है । दूरदर्शी साधकों का यही इष्ट होता है । वे ज्ञान और कर्म का सम्मिश्रण आवश्यक समझते हैं । अतएव अपने प्रयासों में भी योग और तप का समान समावेश करते हैं । इसी को इन शब्दों मे भी कहा जा सकता है कि गायत्री और सावित्री की उपासना का समन्वय करके चला जाता है । इसी मार्ग पर चलते हुए आत्म कल्याण की विभूतियाँ और लोक कल्याण की समृद्धियाँ उपलब्ध होती हैं । इन्हीं दोनों का नाम ऋद्धि-सिद्धि है । प्रज्ञा और पराक्रम का धियः और कार्य की संयुक्त साधना ही उस स्थिति को उत्पन्न करती है जिससे आत्म कल्याण, लोक कल्याण, के दोनों साधन सधते हैं । शक्ति और शिव का, काली और महाकाली का युग्म यही है । उनका समन्वय यही है ।

विश्वामित्र ने भगवान राम को यज्ञ रक्षा के बहाने बुलाकर बला और अतिबला नामक दो विद्यायें सिखाई थीं । इन्हें गायत्री और सावित्री की समवेत साधना कह सकते हैं । एक से वरदान देने की क्षमता उपलब्ध होती है दूसरी से शाप देने की । एक से आनन्द प्राप्त होता है दूसरी से वैभव । एक का फल मुक्ति है दूसरी का शक्ति । एक को ऋद्धि कहते हैं दूसरी को सिद्धि । इन दोनों का समन्वय उतना ही आवश्यक है जितना प्राण और शरीर का संयोग । जब तक दोनों सम्मिलित हैं तब तक जीवन का चमत्कारी स्वरूप बना रहेगा । इसके अलग होने पर दोंनो की स्थिति दयनीय हो जाती है । समर्थ ऋषि योगाभ्यास भी करते थे और तप साधना भी यह सर्व विदित है । इसी को ब्रह्मवर्चस कहते हैं । परशुराम, द्रोणाचार्य, गुरुगोविन्दसिंह इसी परम्परा के थे । कृष्ण का गीता ज्ञान और चक्र सुदर्शन इसी समन्वय का बोध कराते हैं । भगवान के सभी अवतारों ने धर्म संस्थान और अधर्म निराकरण का उभयपक्षीय प्रयोजन पूरा किया है । धर्म स्थापना के लिए सद्भावनायें और अधर्म निराकरण के लिए प्रचण्ड समर्थता की आवश्यकता होती है ।

प्रायः सभी अवतार इन दोनों ही शिष्टताओं से संयुक्त रहे हैं । इन दोनों का ही समग्र प्रयोग करके वे देवताओं को सहकार और असुरों को दण्ड देकर संतुलन बनाने का आत्म उद्देश्य पूरा कर सके हैं ।

प्राचीन अध्यात्म में उपरोक्त दोनों ही तत्वों का समुचित समावेश है । उसके द्वारा प्राप्त होने वाली उपलब्धियाँ ब्रह्मवर्चस के नाम से जानी जाती थीं । तपस्वी को ओजस्वी, तेजस्वी और मनस्वी भी होना चाहिए । एकाकी अतिवादी से लाभ कम और हानि अधिक है । आगम और निगम, योग और तप मिलकर चलें तभी कल्याण है । असुरों ने भौतिक पक्ष तन्त्र अपनाया और आत्मपक्ष से मुँह मोड़ लिया फलतः वे समर्थ तो बने पर अपने और दूसरों के लिए अभिशाप ही सिद्ध हुए । देवता जब एकाकी सात्विकता तक सीमित हो गये तो उन्हें अपना वर्चस्व गँवाना पड़ा और असुर उन पर हावी हो गये । परित्राण का मार्ग उन्हें तभी मिला जब शक्ति की उपेक्षा छोड़कर उसकी आराधना में निरत हुए । भगवती के अवतरण की कथा, गाथा का जिन्हें परिचय है वे जानते हैं कि महिषासुर, मधुकैटभ, शुंभ, निशंभ, रक्तबीज जैसे संकटों से पार होना तेजस्विता की प्रतीक सशक्तता का अवलम्बन मिलने पर ही सम्भव हो पाया था ।

पौराणिक गाथा के अनुसार ब्रह्माजी की दो पत्नियाँ हैं । एक गायत्री और दूसरी सावित्री । दोनों प्रगाढ़ स्नेह सहयोग के साथ अपने अधिष्ठाता की सेवा साधना करती हैं । इन तीनों का समन्वय त्रिवेणी जैसा कल्याण कारक होता है । सत् चित आनन्द के सत्यं शिवं सुन्दरं की अनुभूति इसी संयोग के माध्यम से उपलब्ध होती है । समर्थता, सजगता, सरसता का संचार उन्हीं के माध्यम से होता है । स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों की अपनी आवश्यकता है, इन्ही तीनों की सहायता से पूरी हो सकती है ।

ब्रह्मवर्चस् साधना में चिर पुरातन तत्व् ज्ञान एवं अध्यात्म विज्ञान को चिर नवीन के अनुरूप बताया गया है । उसमें गायत्री और सावित्री दोनों का समन्वय है । एक मुखी ब्रह्म गायत्री के अन्तर्गत, ब्रह्मी, वैष्णवी, शांभवी, वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता, ब्रह्मविद्या, ऋृतम्भरा आदि की दक्षिणी मार्गी योगपरक साधना की जाती है । पंचमुखी में उसे वाममार्गी तन्त्र पक्ष के

निमित्त प्रयुत किया जाता है । शक्ति साधना और कुण्डलनी जागरण की साधना उसी वर्ग में आती है । दुर्गा, काली, मातंगी, त्रिपुरा, शाकंभरी, भैरवी, कालाग्नि आदि का विधि विधान प्रकारान्तर से सावित्री साधना का ही विस्तार है । ब्रह्मवर्चस कके गायत्री शक्ति पीठ में दोनों का ही समन्वय किया गया है ताकि साधक को समग्र आत्मबल सम्पादित करने और आत्मिक तथा भौतिक प्रगति का समन्वित मार्ग उपलब्ध हो सके ।

यह साधनाऐं समय साध्य होंगी, जो लोग अधिक समय तक रह सकेंगे वह इनका अधिक लाभ प्राप्त करेंगे, मध्यवर्ती एक माह की साधना का उद्देश्य साधना के वह विधि विधान न केवल समझा देना अपितु उनके अभ्यास की जानकारी भी दे देना है ताकि वे अपने घरों पर रहकर भी वह अभ्यास कर सकें । इतनी अवधि में हर व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक स्थिति को परखना भी संभव हो जायगा, सो उसी के अनुरूप उन्हें उच्चस्तरीय साधनाओं की जानकारी भी दे दी जायेगी, जो साधनाऐं उनके लिए उपयुक्त न बैठती हों उनके अभ्यास रोक देने और शेष में समुचित सावधानियाँ बरतने को बता दिया जायगा ।

इतने पर भी ब्रह्मवर्चस शोध साधनाओं का लाभ अत्यल्प व्यक्ति ही प्राप्त कर सकेंगे । इस कठिनाई को दूर करने के लिए १०-१० दिन के लघु संस्करण साधना सत्र चलते रहेंगे । उन शिवरों का स्वरूप एक माह के शिवरों जैसा ही होगा किन्तु उसमें कम समय में थोड़ी ही अभ्यास कराया जाना सम्भव होगा । किन्तु यहाँ के वातावरण समर्थ सानिध्य का इतना सशक्त बीजारोपण उन अन्तःकरणों में कर दिया जायेगा जो घरों में जाकर सामान्य साधना क्रम से भी पुष्पित पल्लवित होता रहेगा ।

अध्यात्म की वैज्ञानिक शोध और अनास्था संकट का निवारण

आज का युग प्रत्यक्ष को स्वीकारता और वैज्ञानिक प्रतिपादनों को महत्व देता है पर चेतना के अस्तित्व को हृदयंगम करते हुए उसे श्रद्धा जन्य मान्यता देने से कतराता है इसका प्रतिफल मानवीय संवेदनाओं की उपेक्षा और उत्पीड़न के रूप में आज सर्वत्र देखा जा सकता है । यह अनास्था संकट व्यक्तिगत जीवन में अनुशासनहीनता पनपाती है, यही पारिवारिक जीवन

की ममता और शुचिता भंग करती है । सामाजिक जीवन में अपराधों की वृद्धि उसी का प्रतिफल है उसे दूर करने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि आध्यात्मिक सिद्धान्तों की पुष्टि भौतिक सिद्धान्तों और उपकरणों के माध्यम से की जाये ।

अब अध्यात्म का भी वही स्वरूप मान्य होगा जो भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों की तरह सर्वत्र एक स्वर से स्वीकारा जा सके । नवीन या प्राचीन का आग्रह न करके हमें तथ्यान्वेषी होना चाहिए जो यथार्थता के अधिकाधिक निकट हो । हर प्रतिपादन को अब इसी समीक्षा के लिए तैयार होकर आना होगा । युग अध्यात्म भी इस परख पर कसा जायगा । छूट उसे भी न मिल सकेगी । प्राचीनता की दुहाई देकर मान्यता प्राप्त कर सकने की स्थिति अब किसी की भी नहीं रही, तो फिर अध्यात्म ही उसका अपवाद कैसे हो सकता है ?

भौतिक विज्ञान के विभिन्न पक्षों की साधन सम्पन्न प्रयोगशालाऐं समस्त संसार में अनेकों भरी पड़ी हैं । उनमें विज्ञान की अनेकों धाराओं के सम्बन्ध में शोध कार्य चलता है । अब तक विज्ञान ने जो चमत्कारी उपलब्धियाँ प्रस्तुत की उनका उत्पादन शोध संस्थानों में प्रयोगशालाओं में ही हुआ है । उपलब्धियों का कार्यान्वयन भले ही विशालकाय कारखानों में होने लगा हो पर उनके बीजारोपण अंकुर उत्पादन एवं पौद विकसित करने का कार्य तो प्रयोगशालाओं में ही हुआ है । आज समस्त मानव समाज को जिन अनेकानेक वैज्ञानिक आविष्कारों का आश्चर्यजनक लाभ मिल रहा है उन्हें प्रयोगशालाओं की देन ही कहना चाहिए । उन उद्‌गम श्रोतों की उपयोगिता गरिमा, आवश्यकता को जितना अधिक मान दिया जाय उतना ही कम है । यदि इन संस्थानों की स्थापना न हुई होती तो प्रगति की आदिम कालीन परम्परा हजारों वर्ष पूर्व की स्थिति में ही समस्त संसार को रख रही होती ।

अध्यात्मवाद वस्तुतः चेतना को उच्चतर बनाने और उच्चतम की स्थिति तक पहुँचाने की सुनिश्चित प्रक्रिया है । ईश्वर आत्मा, कर्मफल परलोक एवं परोक्ष का दर्शन न तो संदिग्ध है और न अनावश्यक । उसकी उपयोगिता इतनी ही है जितनी कि सम्पन्नता एवं बलिष्ठता की । अध्यात्म दर्शन प्राचीन काल में जिस तरह श्रद्धा पर आश्रित होते हुए भी जन-जन की अंगीकृत मान्यता का अंग था उसी प्रकार आज के प्रत्यक्षवाद को भी आत्मवाद की

गरिमा का विश्वास दिलाया जा सकता है । कठिनाई एक ही रही है कि बुद्धिवादी युग की आवश्यकता को देखते हुए अध्यात्म सिद्धान्तों का प्रतिपादन इस तरह नहीं किया गया जैसा कि बदली हुई परिस्थितियों में अभीष्ट था ।

जब सब कुछ गड़बड़ा जाय तो पुनर्मूल्यांकन एवं पुनर्निर्धारण के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह जाता । विशेषतया बुद्धिवाद का समाधान तो तभी होता है जब यथार्थता के प्रतिपादन में सदा से काम आती रही शोध प्रक्रिया के सहारे तथ्यों को प्रस्तुत किया जाय ।

इस कठिन कार्य को ब्रह्मवर्चस् ने युग की महती आवश्यकता समझते हुए अपने कंधे पर वहन करने का निश्चय किया है । तदनुसार उसे एक समर्थ शोध संस्थान के रूप में विकसित किया जा रहा है । ब्रह्मवर्चस की प्रस्तुत अनुसंधान प्रक्रिया का स्वरूप और उद्देश्य एक ही है । आत्मवाद का विज्ञान एवं दर्शन के आधार पर प्रस्तुतीकरण । इसे युग की, मनुष्य की सामयिक आवश्यकता कहा जा सकता है । इसी मोर्चे पर हमें सुरसा जैसा संघर्ष करते हुए आगे बढ़ना है । वही किया भी जा रहा है ।

शोध संस्थान के दो वर्ग हैं (१)सात्विक अनुसंधान (२) प्रयोगात्मक अन्वेषण - परीक्षण । एक का माध्यम है स्वाध्यय सत्संग । दूसरे का यन्त्र उपकरणों के माध्यम से वैज्ञानिक विश्लेषण । दोनों के स्थान एक, कक्ष अलग–अलग हैं । जिस प्रकार आगम और निगम, योग और तन्त्र मिलकर गायत्री शक्तिपीठ का स्वरूप बना है । उसी प्रकार ग्रंथों कीखोजबीन एवं मनीषियों के बीच आदान प्रदान के आधार पर अनुसन्धान कार्य चला था । पदार्थों एवं प्राणियों पर आध्यात्मिक गतिविधियों का क्या प्रभाव पड़ता है इसकी जाँच पड़ताल साधन सम्पन्न प्रयोगशाला के माध्यम से सुयोग्य विज्ञान वेत्ताओं द्वारा की जायगी ।

स्वाध्याय परक साहित्य अनुसन्धान की प्रक्रिया यह है कि देश–विदेश में अध्यात्म के सन्दर्भ में जो सोचा, कहा और किया गया है उसका संकलन एक समर्थ पुस्तकालय के अन्तर्गत किया जाय । भारतीय अध्यात्म शास्त्र का इसमें बाहुल्य होना स्वाभाविक है । पर प्रयत्न यह भी किया गया है कि अन्य भाषाओं के साहित्य का देश भर के पुस्तकालयों में से ज्ञान संचय का भी क्रम चलता रहे इसके लिए एक पूरा अध्ययन दल ही काम करता है वही इस तरह की सारी सामग्री संकलित करेगा और अध्यात्म के सिद्धान्तों की

पुष्टि करने वाली सामग्री निकालता व प्रस्तुत करता रहेगा । अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से उसकी जानकारी निरन्तर दी जाती रहेगी । जिन लोगों की इस अध्ययन में अभिरूचि हो उनके निवास की व्यवस्था भी ब्रह्मवर्चस में है । जिन नगरों में महाविद्यालय है वहाँ के परिजन इस तरह की सामग्री की जानकारी भी देते रह सकते हैं । इस शोध का प्रयोजन यह है कि अध्यात्म की मिलावटों और भ्रान्त धारणाओं को ढूँढा हटाया और उसके स्थान पर बुद्धि संगत मान्यताओं को प्रतिष्ठापित किया जाये ।

ब्रह्मवर्चस शोध का दूसरा विभाग प्रयोग परक है । इसमें इस प्रयोग परक विद्या के भी दो भाग होंगे (१) यज्ञ और उसके द्वारा मनुष्य जीवन प्राणीय जीवन, वृक्ष वनस्पति और वातावरण पर पड़ने वाला प्रभाव एवं प्रतिक्रिया (२) योग साधनाओं का शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास में योगदान । यज्ञ चिकित्सा के सन्दर्भ में अपनाई गई प्रक्रिया का पूर्ण विवरण इसी श्रृंखला की पुस्तक "गायत्री साधना और यज्ञ प्रक्रिया" पुस्तक में दिया जा रहा है । दूसरे का ही उल्लेख यहाँ पर है ।

अध्यात्म विज्ञान के अनुरूप जीवन क्रम बदलने पर, मानवी शरीर पर क्या प्रतिक्रिया होती है । यह जानने के लिए शोध संस्थान की प्रयोगशाला का सुनियोजित ढाँचा खड़ा किया गया है । जाँच पड़ताल का आधार यह है कि किसी साधना के करने से पूर्व व्यक्ति की क्या स्थिति थी ?साधना करने के साथ-साथ उसमें क्या परिवर्तन आरम्भ हुआ ?अधिक समय तक अभ्यास करने के उपरान्त स्थिति में क्या हेर-फेर हुआ ? प्रस्तुत साधना उपक्रम उसे अपनाने वाले व्यक्ति के लिए कितना उपयोगी अनुपयोगी सिद्ध हुआ ? अन्य उपायों से जो लाभ मिल सकता था, उसकी तुलना में साधना क्रम अपनाने वाला नफे में रहा या घाटे में ।

साधनाएँ किसी व्यक्ति की शारीरिक स्थिति पर क्या प्रभाव डालती हैं ? उसकी दुर्बलता या रुग्णता के निराकरण में कितनी सहायक होती हैं ? बुद्धि की तीव्रता सूझ-बूझ की प्रखरता, संतुलन-स्थिरता जैसे लाभ किस साधना के आधार पर किस सीमा तक मिलते रह सकते हैं ? साधनाओं के सहारे प्रतिभा के विकास एवं व्यक्तित्व को प्रखर बनाने में क्या कुछ सहायता मिलती है । अवसाद, आत्महीनता, निष्क्रिय चिन्तन के मनोरोगी क्या किसी साधना के सहारे अपनी स्थिति सुधार सकते हैं । क्या चंचलता को

एकाग्रता में बदला जा सकता है ? आतुर आवेशग्रस्तता को क्या सहिष्णुता और धैर्य में बदला जा सकता है ? शौर्य, साहस, पराक्रम, पुरुषार्थ जैसी मानसिक विशेषताओं का सम्वर्धन क्या साधना के सहारे संभव हो सकता है । आत्म नियन्त्रण के आधार पर मिलने वाली उपलब्धियों का लाभ किन साधनाओं के आधार पर किस परिमाण में मिल सकता है ?

भौतिक पदार्थो एवं उपायों से मनुष्य जैसे लाभ उठाता है, क्या वैसे ही आत्मबल के सहारे उपार्जित किये जा सकते हैं ? क्या मनुष्य के भीतर कोई दिव्य क्षमताएँ है ? यदि हैं तो उनका स्वरूप और उपयोग किस प्रयोग के लिए, किस प्रकार, कितनी मात्रा में किया जा सकता है । सूक्षम शरीर के अस्तित्व के क्या प्रमाण हैं ? यदि वह होता है, उसे परिपुष्ट बनाने से क्या सामान्य और क्या असामान्य लाभ मिल सकते हैं ? चेतना के किस स्तर के प्रसुप्त और जागृत होने पर व्यक्तित्व में सत्कर्म जैसा क्या कोई अन्तर आता है तो स्थिति में सुधार का क्या लाभ है ?

ओजस् के नाम से जानी जानें वाली मानवी विद्युत की सामान्य मात्रा को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है और उससे क्या लाभ उठाया जा सकता है ? तेजस् के नाम से जाने जाने वाले मनोबल का आधार और स्वरूप क्या है ? जीवट, साहस एवं पराक्रम को बढ़ाने में किन साधनाओं का क्या प्रभाव पड़ता है ? वर्चस् नाम से जिसे जाना जाता है, वह आत्मबल, आस्थाओं के परिवर्तन में किस प्रकार सहायता दे सकता है और उसे किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ? बुरी आदतों को सुधारने में अपने को असमर्थ पाने वाले व्यक्ति क्या उपयोगी परिवर्तन अपने उस मनोबल के सहारे कर सकते हैं ? उसे कैसे पाया और बढ़ाया जा सकता है ? श्रेष्ठता के प्रतीक सद्गुणों की उपयोगिता समझते हुए मनुष्य उन्हें स्वभाव में उतार नहीं पाता, इस कठिनाई का हल क्या किन्ही साधनाओं के सहारे निकल सकता है ।

शरीर क्षेत्र में घुसी हुई विकृतियों के निराकरण के लिए जिस प्रकार औषधि, सुई, शल्यक्रिया आदि के सहारे सुधार हो सकता है, क्या उसी प्रकार किसी पदार्थ के सहारे मनुष्य की अनास्था एवं आस्था परक विकृतियों में सुधार किया जा सकता है ? क्या कोई आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति किसी दुर्बल स्तर के व्यक्ति को अपनी क्षमता विकसित करके लाभान्वित कर सकता है ।

सूक्ष्म शरीर में बताये जाने वाले शक्ति केन्द्रों का अस्तित्व क्या प्रत्यक्ष

परीक्षण से सिद्ध हो सकता है ? यदि है तो उसकी सामर्थ्य सीमा क्या है ? उन केन्द्रों को किस प्रकार शक्तिवान बनाया जा सकता है और उस सशक्तता का किस प्रयोजन के लिए क्या उपयोग हो सकता है ? मनुष्य को अनैतिक से नैतिक बनाने में क्या कोई अध्यात्म उपचार सहायक हो सकते हैं । यदि हो सकते हैं तो उन उपचारों का स्वरूप और क्रियान्वयन किस प्रकार किया जाय ? आत्मबल की अभिवृद्धि से क्या मनुष्य में अधिक सत्प्रवृत्तियाँ उभर सकती हैं ? यदि हाँ तो उनका लोकपयोगी नियोजन किस प्रकार हो सकता है ? हेय स्तर की आकांक्षाएँ आदतों एवं आस्थाएँ उलटने में जिन साधनाओं का सभीष्ट प्रतिफल हो सकता है, उसका स्वरूप क्या है ? अन्न से मन बनने वाली बात कहाँ तक सच है ? और सच है तो व्यक्तित्व में उपयोगी परिवर्तन करने के लिए आहार में क्या परिवर्तन किया जाय ? किन तपश्चर्याओं और किन संयम साधनाओं का मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ता है ? योग विज्ञान की किस धारा का उपयोग किस कठिनाई के समाधान में किस प्रकार किया जा सकता है ? जप, ध्यान, प्राणायाम आदि साधनाओं के क्या कुछ प्रभाव होते हैं, यदि होते हैं तो उसका कारण क्या है ? संकल्प बल की सामर्थ्य कितनी है, इसे जानने का विश्वस्त उपाय क्या है ?

मानवी सत्ता की अविज्ञात क्षमताएँ क्या हैं, और उन्हें किस प्रकार जगाया और काम में लाया जा सकता है ? विराट ब्रह्माण्ड में भरी हुई अदृश्य भौतिक शक्तियों को क्या मानवी चुम्बक अपनी ओर आकर्षित कर सकता है ? यदि कर सकता है तो कितनी मात्रा में ? और किस प्रयोजन के लिए ? क्या ब्रह्माण्ड में कोई चेतनात्मक प्रवाह भरा पड़ा है ? यदि है तो उसके साथ किस प्रकार सम्बन्ध जुड़ सकता है । और उस समागम से क्या प्रत्यक्ष और क्या अप्रत्यक्ष लाभ मिल सकता है ?

क्या मनुष्य की इन्द्रिय ज्ञान सीमा तक सीमित चेतना को इतना विकसित किया जा सकता है कि वह इस सीमा से बाहर की हलचलों को जान सके ? ऐसी क्षमता प्राप्त करने के लिए व्यक्तित्व को किस प्रकार अपनी चुम्बकीय क्षमता विकसित करनी पड़ती है ? देवसत्ता क्या है ? उसके अस्तित्व का क्या कारण है ? उसका कैसा सम्पर्क किसके लिए क्या उपयोगी हो सकता है ? एकाकी और सामूहिक साधनाओं की प्रतिक्रिया में क्या

अन्तर रहता है ? आत्मवान् मनुष्य का व्यक्तित्व अपने समीपवर्ती और दूरवर्ती क्षेत्रों में क्या प्रभाव उत्पन्न करता है ? सम्पर्क और सानिध्य का प्रभाव किस पर कितना और क्या हो सकता है ?

ऐसे–ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो अध्यात्म क्षेत्र से परिचय रखने वाले प्रत्येक बुद्धिजीवी के मन में उठते रहते हैं । अनास्थावानों को यह विश्वास दिलाना ही कठिन पड़ता है, मनुष्य चलते–फिरते पौधों से अधिक कुछ है या नहीं ? आत्मा, परमात्मा, कर्मफल, पुनर्जन्म, परलोक आदि धर्म प्रतिपादनों को वे कपोल कल्पना कहते हैं । ऐसे लोगों का शोध प्रयोजन के आधार पर उनकी शंका कुशंकाओं का निराकरण हो सकता है । बुद्धिवाद और प्रत्यक्ष वाद ही जिनके लिए सब कुछ है उनके लिए उसी आधार पर समाधान खोजने होंगे । इस सन्दर्भ में ब्रह्मवर्चस् का शोध संस्थान अगले दिनों महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ उपस्थित कर सकेगा ऐसा विश्वास किया जा सकता है । इन शोधों के आधार पर यदि अनास्था को बदला जा सके तो समझना चाहिए कि प्रस्तुत आस्था संकट का हल निकल आया और परिष्कृत दृटिकोण को एक सुसंस्कृत जीवन क्रम अपनाए जाने का आधार बन गया । युग–परिवर्तन के लिए मानवीय अन्तराल को बदलना होगा । यह कार्य लोक शिक्षण द्वारा तो होना ही चाहिए, पर उसके पीछे तर्क, तथ्य, प्रयोग और परीक्षण का आधार रहेगा, तो ही लोक शिक्षकों को अपनी बात बजनदार ढ़ग से कहने का अवसर मिलेगा । शंकालु लोक मानस की स्थिति इन दिनों दूध के जले छाछ पीने से डरना जैसी हो रही है । शास्त्र–प्रमाण और आप्तवचन अब समाधान कारक नहीं रहे बुद्धि–वाद और प्रत्यक्ष वाद पर आधारित आज का भौतिकवाद इसी कसौटी पर कसना चाहता है । अध्यात्म मान्यताओं के साधनों को अपनाने में जो असमंजस इन दिनों उत्पन्न हो गया है, उसी का निराकरण प्रत्यक्ष प्रमाणों के अतिरिक्त और किसी प्रकार हो ही नहीं सकता । विश्व मानव के समक्ष उपस्थित एक भयावह अवरोध का निराकरण करने के लिए ब्रह्मवर्चस् का शोध संस्थान तत्परता के साथ कटिबद्ध हो रहा है, उसमें उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना का सहज दर्शन हो सकता है ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा